सुवीरा

[मौलिक उपन्यास]

कर्त्तारसिंह दुग्गल

K. S. Duggal

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

मूल्य : दो रुपये पचास पैसे
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६
मुद्रक : रायसीना प्रिंटरी, दिल्ली-६

SUVIRA by Kartar Singh Duggal : Novel : 2.50

सुवीरा

Suveera

सुबोरा

मैं सोचती थी कि मेरी ज़िन्दगी अब एक ऐसी झील की तरह होगी, जिसके चारों ओर जैसे ऊंचे-ऊंचे सरु लगे हों। सरु, परियों जैसे अपने यौवन के, सरु सौन्दर्य के जो अभी तक अछूता था, और सरु अपने जीवन-साथी की मुहब्बत के, सरु अपने प्रियतम की ऊंची पदवी के, उस सारे असर-रसूख के जो उसके अपने कारण, जो उसके अब्बा के कारण लाहौर में उसका बना हुआ था।

शाम हो रही थी जब हम लाहौर पहुंचे। मेरे हाथों और पांवों पर मेहंदी का रंग जैसे मचल-मचल पड़ रहा था। मेरे आसपास एक सुगन्ध फैली थी, जो एक दुलहिन के पोर-पोर से फूटती है। उंगलियों पर, कलाइयों पर, गले में, नाक में, कानों में, माथे पर, बालों में, पांवों पर, गहनों से लदी मैं यूं लग रही थी जैसे कोई मुग़ल शाहज़ादी अपने शाहजहां की पलकों तले किसी ताजमहल के स्वप्न देख रही हो।

और ठुमुक-ठुमुक चलती, अरमानों से भरी, मैंने अपने फ्लैट में प्रवेश किया। यह गोल कमरा था। यह हमारा खाने का कमरा था। यह हमारे सोने का कमरा था। यह कमरा फालतू था। और यह बरामदा था, जिसमें बैठकर मैं अपने फरहाद का इन्तज़ार किया करूंगी। सामने टेलीफोन रखा था जिसे मैं उठाकर बार-बार पूछा करूंगी—वे दफ्तर से चले हैं कि नहीं ? कितनी देर हुई उनको वहां से चले हुए ? हाय, कब पहुंचेंगे ? इतनी देर क्यों लगा रहे हैं ? रात हो रही है और ये अभी तक नहीं लौटे। शायद रास्ते में कोई चीज़ खरीदने लग गए होंगे।···कब तक मैं इस घर में मेहमान बनी रहूंगी। हर रोज़ कोई तोहफ़ा, हर रोज़ कोई नई

सौगात, हर रोज़ यह कहना—'सुवी, भला बूझो तो इस डिब्बे में क्या है ?' रंग-बिरंगे कागज़ों में लिपटे हर रोज़ नए-नए पैकेट, हर रोज़ दफ्तर से देर में आने की कोई-न-कोई कीमत···मैं तो थक जाऊंगी नाज़ करते-करते। मैं तो थक जाऊंगी अपनी अदाओं के दाम चुकवाते-चुकवाते···।

यूं खयालों में खोई-खोई मैं बरामदे में पड़ी बेंत की एक कुर्सी पर बैठ गई। फरहाद सामने मोटर में से सामान निकलवाकर अन्दर रख रहा था। नई जिन्दगी के इन हसीन सपनों में डूबी हुई, मेरी पलकें जैसे नशे में मुंद रही थीं कि सामने पड़ा टेलीफोन बजने लगा। मैं एकदम चौंक उठी। अपने घर का पहला काम करने के लिए मेरे सामने था। फ़रहाद के किसी दोस्त का टेलीफोन होगा। इस फ्लैट में से किसी लड़की की कोमल आवाज़ सुनकर कोई कितना हैरान होगा ! कोई पूछेगा तो मैं कहूंगी, मैं मिसेज़ फ़रहाद बोल रही हूं।

मैं यह सोच ही रही थी कि फ़रहाद अपने हाथ का काम वैसे का वैसा छोड़कर जल्दी टेलीफोन सुनने लगे।

....

हां।

....

जी।

....

जी हां।

....

नहीं ।

....

हम अभी पहुंचे हैं।

....

नहीं।

....

नहीं, आज नहीं।

श्रौर फिर फ़रहाद ने टेलीफोन बन्द कर दिया । टेलीफोन को सुनने के लिए उठी मैं, वैसी की वैसी खड़ी रही ।

"किसका टेलीफोन था ?" मैंने मोटर की श्रोर लौटते हुए फ़रहाद से पूछा ।

"दफ्तर के किसी दोस्त का था," मेरी श्रोर देखे बिना उसने जवाब दिया श्रौर श्रपने काम में लग गया ।

टेलीफोन सुनते हुए फ़रहाद के चेहरे का बदलता हुश्रा रंग मैंने देखा था । मेरे कानों ने वह कोमल स्त्री-स्वर भी सुना था जो टेलीफोन के दूसरी श्रोर से श्रा रहा था । टेलीफोन सुनने के लिए फ़रहाद की वह उत्सुकता, टेलीफोन बन्द करने के लिए उसकी बेचैनी, टेलीफोन छोड़कर बाहर जाने की जल्दी, ये सब कुछ जैसे तीरों का एक गुच्छा बनकर मेरे सीने में श्रा लगा । मैं घायल-सी कुर्सी पर ढेर हो गई । मेरे हाथ-पांव ठंडे पड़ गए । मेरी श्रांखों के सामने श्रंधेरा छा गया । श्रौर पता नहीं कितनी देर तक वैसी-की-वैसी पत्थर बनी मैं पड़ी रही ।

फिर श्रड़ोस-पड़ोस वालों का श्राना शुरू हो गया । होंठों पर मुस्कान लाकर मुझे उनका स्वागत करना था । फिर फ़रहाद के दोस्त, मिलने-जुलने वाले श्रा गए । मुझे माथे पर खुशियां बिखेर-कर उनकी खातिर करनी थी । नई ब्याही दुलहिन के सारे चाव मुझे श्रपने चेहरे पर दर्शाने थे । नई ब्याही दुलहिन के सारे स्वप्न मुझे श्रपनी पलकों में संजोने थे । बात-बात में फ़रहाद को 'डार्लिंग, डार्लिंग' कहना था । बात-बात पर सबके सामने श्रपनी सारी भूख लेकर उसकी श्रांखों में देखना था ताकि लोग चर्चा करें दुलहिन के हुस्न की, ताकि लोग चर्चा करें प्रेम-विवाह की मधुरता की, ताकि लोग कहें कि इस तरह की जोड़ी न कभी देखी है, न सुनी है ।

फिर फ़रहाद के दफ्तर का फोटोग्राफर श्रा गया । वह गया श्रौर एक श्रौर श्रा गया । श्रौर ढेर रात गये तक हम एक-दूसरे के साथ सट-सटकर खड़े होते रहे श्रौर लोग हमारी तस्वीरें उतारते जाते । फोटोग्राफर कभी मुझे किसी तरह खड़े होने के लिए कहते, कभी किसी तरह बैठने के लिए । कभी कहते, मैं खिलखिलाकर

हंसती हुई फ़रहाद की ओर देखूं। कभी कहते, मैं उसके कन्धों को अपने दोनों हाथों से पकड़कर ऐसे खड़ी हूं जैसे मैंने अपना सारा बोझ उसपर डाल दिया हो। और यूं अभिनय करते हुए एकदम मुझे खयाल आया, मुझे तो एक रास्ता मिल गया था। एक ढंग, जिसके सहारे शायद मुझे सारी उम्र गुजारनी होगी।

मैं अपना सब कुछ छोड़कर सागर में कूद पड़ी थी, और आगे बढ़कर मैंने देखा, जिस किनारे पर मुझे ठिकाने लगना था, वहां तो किनारा था ही नहीं।

मैं कितनी बदनसीब थी !

जब लोग गए, मैं बार-बार गुसलखाने जाती और छल-छल आंसू रोती। मेरी आंखें लाल हो गई थीं।

फ़रहाद सोचता, शायद मुझे मेरी अम्मी याद आ रही थी। आखिर अपनी मां से मैं कभी बिछुड़ी भी तो नहीं थी। शायद फ़रहाद सोचता कि टेलीफोन वाला उसका कपट मैं जान गई थी। पता नहीं वह क्या सोचता, सारे दिन का थका-हारा सोफे पर बैठा वह सो गया।

जब वह गहरी नींद सो चुका तो मैंने उसे अपनी बांह का सहारा देकर साथ के पलंग पर डाल दिया। फिर मैंने उसके जूतों के फीते खोले। कभी-कभी प्यार में आकर सोचा करती थी, अपने महबूब के बूटों के मैं तस्मे खोला करूंगी। मेरे लिए कमाकर घर लौटे अपने घरवाले के पांव से मैं मोज़े उतारा करूंगी। और आज मैं वही सब कुछ कर रही थी, लेकिन एक मशीन की तरह, एक बांदी की तरह, जिसको कोई खरीदकर लाया हो, और पहले रोज़ जिसे काम करने का ढंग न आता हो। हाथ कहीं डालती, उसका हाथ कहीं पड़ता। करना कुछ चाहती, उसके हाथों से कुछ और हो जाता।

सारी रात फ़रहाद बेसुध सोया रहा और सारी रात मैं मछली की तरह तड़पती रही; कभी एक कमरे में, कभी दूसरे में, कभी तीसरे में। बाहर बरामदे की बत्ती बुझाने के लिए गई तो सामने पड़े टेलीफोन को देखकर मेरी सिसकियां निकल गईं। बरामदे के अंधेरे में बैठी मैं रोने लगी। रात घोर अंधेरी थी। चारों ओर सब फ्लैटों में

वत्तियां बुझ चुकी थीं। केवल लान के सामने वाले फ्लैट के बरा-मदे में बत्ती जल रही थी।

शहर के घड़ियाल ने एक बजाया। रो-रोकर मेरी आंखों में आंसू सूख गए थे।

बरामदे के अंधेरे में टहलती अचानक मेरी नजर सामने फ्लैट पर पड़ी जिसमें एक बत्ती जल रही थी। मुझे लगा जैसे बरामदे के पीछे कमरे की खुली खिड़की में कोई औरत खड़ी किसीका इन्तजार कर रही हो। यह तो सचमुच कोई औरत थी। माथे पर बिंदिया, मांग में सिन्दूर, पतली-लम्बी, दूध की सी सफेद साड़ी में कैसी बेचैन लग रही थी!

कोई औरत किसीकी प्रतीक्षा कर रही थी। कोई मर्द होगा, मैं सोचने लगी, कोई जिसने अपना इकरार पूरा नहीं किया था। उसका प्रियतम होगा। वह आयेगा और बत्ती बुझ जाएगी। दो बज चुके थे। वह अभी तक नहीं आया था। प्यार करने वालों की रातें कितनी लम्बी होती हैं! वह इतनी देर क्यों कर रहा है? औरत कभी अन्दर जाती, फिर लौटकर खिड़की में आ खड़ी होती। शायद डर रही थी कि कहीं पलंग पर आ बैठी तो लेटने का जी कर आएगा। लेटी तो पलकें मुंद-मुंद जायेंगी। पलकें मुंदीं तो कहीं नींद न आ जाए। और फिर कोई आयेगा, दरवाजा खट-खटायगा और लौट जाएगा। सुबह, बाहर केवल कदमों के निशान होंगे, कदमों वाला नहीं होगा। फिर चाहे सारी उम्र इन्तजार करना पड़े। और फिर जाहे वर्षों तक रातें आंखों में काटनी पड़ें।

किसीका प्रियतम आ रहा था।

और मैं अपने सारे दुख भूलकर, बरामदे में खंभे के साथ लगी, सामने फ्लैट की खिड़की में खड़ी लड़की की ओर देखने लगी। बरामदे की रोशनी कभी-कभी ठीक उसकी नाक के बेसर पर जा पड़ती और बेसर में लगा मोती इन्तजार कर रही लड़की के गोरे-गोरे चेहरे की विकलता को और उजागर कर देता। मेरी उम्र की होगी, मैंने सोचा। नहीं, शायद एक-दो वर्ष मुझसे भी कम। दूध-सी उजली रेशमी साड़ी, तस्वीर-सी। जैसे आकाश से

उतरी परी हो । आने वाले की इतनी रात गए तक प्रतीक्षा करनी होती है ! और मैं सर से लेकर पांव तक कांप गई ।

और फिर मुझे सामने सड़क पर लड़खड़ाते हुए कदम दिखाई दिये। ये तो कोई उधर ही जा रहा था। शराब में चूर। सड़क के किनारे बिजली के खम्भे के नीचे खड़े होकर उसने अपने कपड़े झाड़े। फिर उसने जेब में से एक पान निकालकर मुंह में डाला। वह तो उधर ही जा रहा था, सामने फ्लैट की ओर जहां बत्ती अभी तक जल रही थी। अपने कदमों को सम्हालता वह बरामदे में घुसा। उसके पांवों की चाप सुनकर सहसा सामने का दरवाज़ा खुला और बिजली की तेज़ी के साथ लड़की ने आने वाले को सम्हाल लिया। हाय, कितनी सुन्दर लड़की थी ! जैसे हाथ लगने से मैली हो। कमरे में जाती हुई उसने बरामदे की बत्ती बुझा दी। और अब अन्दर कमरे की बत्ती जल गई थी। आने वाले को वह पलंग पर बिठा रही थी। सामने खिड़की में से मैं सब कुछ देख रही थी। उसके माथे पर ढलके बालों को पीछे कर रही थी। उसके जूतों के फीते खोल रही थी। जूते उतारकर उसके पांव से उसके मोज़े निकाल रही थी। और अब उसे पायजामा पहनवा रही थी। कोट उतारकर उसकी कमीज़ के ऊपर वाले बटन ढीले कर रही थी। और अब उसके पास पलंग पर बैठी हंस-हंसकर उससे इधर-उधर की बातें कर रही थी, उसकी उंगलियों को अपनी उंगलियों में लेकर खेल रही थी।

हैं ! मर्द तो उल्टियां कर रहा था ! कैसे उसने उसकी सारी साड़ी भर दी। दरी का सत्यानाश कर दिया। लड़की, वैसी की वैसी, उसके सर को ढक रही थी। और अब तौलिए से उसे साफ कर रही थी। उसके गले पर, छाती पर पाउडर छिड़क रही थी। और अब अत्यन्त धीरज से उसकी चादर बदल रही थी। अपनी रेशमी साड़ी उसने कभी की उतारकर फेंक दी थी। पेटीकोट और ब्लाउज़ में उसे ठंड लग रही होगी। लाहौर में ठंड भी तो कितनी थी ! आने वाला करवट लेकर अब सो गया था शायद। और अब वह दरी साफ कर रही थी। कितनी देर से बार-बार कपड़

को गीला करती थी, बार-बार सामने चिलमची में उसे निचोड़ती। यूं तो उसे ठंड लग जायेगी। खिड़की खुली थी, रोशनदान खुला था। अब वह रात के कपड़े पहनकर आ गई थी। अपने बालों में लगे फूलों को निकालकर सामने मेज़ पर रख रही थी। इतने सुन्दर बने जूड़े को खोल रही थी। सोने से पहले अपने बालों को कंघी कर रही थी। अब फिर अन्दर गई। इस बार सारा मेकअप धो आई—लिपस्टिक, पाउडर, आंखों का काजल। कानों में झिलमिला रहे झुमके उसने उतार दिए। अपने पलंग का पलंगपोश उठाते उसके दिल में कुछ आया, वह फिर सोने वाले के पलंग के पास गई। उसके माथे पर हाथ रखकर उसने देखा। नहीं, उसे बुखार नहीं था। और जैसे उसने ठंडी सांस ली। दीवार पर लगी भगवान कृष्ण की तस्वीर के सामने वह हाथ जोड़, आंखें मूंदे कितनी देर खड़ी रही। फिर उसने सिर नवाया और अपने पलंग की ओर जाते हुए कमरे की बत्ती बुझा दी।

सब फ्लैटों की बत्तियां बुझ चुकी थीं। चारों ओर अन्धकार छा चुका था। फिर मुझे सहसा अपने अन्दर के अंधेरे का ख्याल आया। अपनी ज़िन्दगी की घोर काली रात का ख्याल आया जो मुंह फाड़े मुझे निगलने का इन्तज़ार कर रही थी। और बाहर का अंधेरा मुझे अच्छा-अच्छा लगने लगा।

मैंने सोचा, मैंने जुआ खेला था, और मैं हार गई थी। अब हारे हुए जुआरी की बेबसी थी, और मैं। मैंने तो अपनी सारी ज़िन्दगी पहले ही दांव पर लगा दी थी और मैंने मात खाई थी। मुंह के बल औंधी जा पड़ी थी। ऐसी चोट जिसकी दवा कहीं भी नहीं। ऐसा दर्द जिसका किसीके साथ भी ज़िक्र नहीं हो सकता था।

मुझे बार-बार उस रात अपनी सहेली लुबना की याद आती रही। जो कुछ लुबना ने फरहाद के बारे में कहा था, एक-एक बात सही निकली। लुबना हमेशा ठीक थी, और मैं हमेशा गलत। मेरे लिए लुबना ने क्या-क्या किया। और मैंने उसका क्या जवाब दिया। लुबना सच्ची थी। हमेशा उसने मुझे कांटों में से निकालकर फूलों की राह पर डाला। केवल इस बार मैंने उसकी बात नहीं मानी थी।

एक ही बार मैंने उसकी राय नहीं मानी और मैं जिन्दगी के भंवर में जा फंसी थी। और भंवर भी ऐसा कि नीचे ही नीचे मुझे डुबोए जा रहा था। पता नहीं ऐसी और कौन-सी गहराइयां थीं जिनमें मुझे अभी उतरना बाकी था।

उस रात अकेली बैठी मैंने अपने मन में कई फैसले किये। मैंने सोचा, जो होना होता है, सो होकर रहता है। मेरी मां ने जहां मुझे इतना हुस्न दिया था, मेरी मां ने जहां मुझे अपने ज़ेवर बांटकर दिए थे, वहां अपना भाग्य भी शायद बांटकर मेरे पल्ले बांध दिया था। अगर मेरी मां फरहाद के अब्बा से न शादी करती तो क्यों मैं इस जाल में फंसती? अगर मेरी मां सारी उम्र अपनी मनमर्ज़ी न करती तो मैं क्यों इस तरह अपनी ज़िद पूरी करवाती?

और अब मुझे अपने किए का फल पाना था। अब खिड़की में खड़ी आधी-आधी रात तक किसीका मुझे इन्तज़ार करना था। अब किसीके लड़खड़ाते हुए कदमों को संभालकर उसे अन्दर लाना था। अब शराब में मदमस्त बहरे कानों को हंस-हंसकर मुझे मीठी बातें सुनानी थीं। अब नशे में चूर मुंदी पलकों के सामने मुझे अपने यौवन का इम्तिहान लेना था।

और मैं अपनी नाक, हाथ और कानों के ज़ेवर उतारती हुई जब अन्दर गई तो शहर का घड़ियाल छः बजा रहा था। सुबह हो रही थी। बाहर सड़क पर दूध से लदे ग्वालों की आवा-जाही शुरू हो गई थी। अखबार वाले लड़ाई की, बाढ़ की, भूख की, आग की तबाही की खबरें लिए पर्चे बांट रहे थे।

मेरी सुहागरात बीत गई थी। ब्याह की पहली रात, जिसके बारे में लोग इतनी कहानियां कहते हैं, वह रात गुजर गई थी।

मैं अन्दर गई। मैंने एक आलमारी खोली, शराब की बोतलों से भरी हुई थी। शराब की खाली बोतलें, शराब की भरी बोतलें। सिग्रेटों के डिब्बे बन्द, खुले हुए। कितनी देर मैं आलमारी को पकड़े खड़ी रही। मेरा जी चाहा, मैं दूसरी आलमारी भी खोलकर देखूं। लेकिन फिर मेरी हिम्मत न पड़ी।

कमरे में, मेरा जैसे दम घुटने लगा। मैं फिर बाहर बरामदे

में निकल आई। हल्की-हल्की रोशनी हो रही थी। सामने सीढ़ियों में अखबार वाला अखबार फेंक गया। मैंने बरामदे की बत्ती जलाई और अखबार को उठाकर देखने लगी। एक सफा उलटा और सामने हमारी तस्वीर छपी हुई थी। अमुक कर्नल का बेटा फरहाद और दिल्ली के मशहूर अमुक डाक्टर की बेटी सुबीरा, जिनका शुभ विवाह अभी-अभी हुआ है। इस सुन्दर जोड़ी को सब ओर से बधाइयां मिल रही हैं।

तस्वीर में मैं कितनी प्यारी दुहलिन लग रही थी! हाय! इस तरह सुन्दर दुलहिन बनने के लिए कभी-कभी किसीको कितनी कीमत चुकानी होती है!

२

टेलीफोन वाली घटना का जिक्र मैंने फरहाद से नहीं किया। बल्कि मैंने जान-बूझकर कोशिश की कि अगर उसे कोई शक पड़ गया तो उसे एक दुलहिन की अदाओं के जादू से भुला दूं। और इसमें शायद मैं सफल भी रही। और फिर लाहौर की जिस सोसाइटी में मैं आई थी उसमें एक नई ब्याही लड़की को सोचने की फुर्सत ही कहां होती है! अगली सुबह अभी हम तैयार भी नहीं हुए थे कि टेलीफोन बजना शुरू हो गया। फरहाद के दोस्त, रिश्तेदार फूल लिये, तरह-तरह की सौगात लिये आने लगे। और फिर कई दिनों तक जिन्दगी दावतों, पार्टियों, पिकनिकों की अटूट लड़ी होकर रह गयी। सवेरे का नाश्ता बाहर, दुपहर का खाना बाहर, शाम की चाय बाहर, रात का फिर खाना बाहर और बीच का समय दुलहिन को सजने में बीत जाता, इधर-उधर की तैयारियों में कट जाता।

धीरे-धीरे फरहाद की सब आदतें मुझे पता चलने लगीं। जिन्दगी की अजीब दौड़ थी। फरहाद की हमेशा यह कोशिश होती कि मुझसे उसकी हर बात छुपी रहे, मेरी हर लम्हा ये कोशिश होती कि मेरे पति की कोई बात मुझे न पता चले, फिर भी

उसकी एक-एक बात मुझे मालूम हो रही थी। उसका एक-एक भेद मुझपर खुल रहा था।

कई बातें ऐसी थीं जिनपर पर्दा डालना फरहाद के लिए अत्यन्त कठिन था। मुझे लाहौर आए कोई दो दिन हुए होंगे कि गोल कमरे में बैठा फरहाद अखबार पढ़ रहा था। एक हाथ में अखबार और दूसरे हाथ से तिपाई पर रखे सिग्रेटों के डिब्बे से खेल रहा था। कभी उसका ढक्कन खोल देता, कभी बन्द कर देता। कभी डिब्बे को आहिस्ता-आहिस्ता सहलाने लगता। कित्ती देर अपनी उंगलियों से डिब्बे के ढक्कन पर वह धीरे-धीरे जैसे तबला बजाता रहा। मैं सामने सोफे पर लेटी अधमुंदी, अधखुली पलकों से देख रही थी। फिर फरहाद ने डिब्बा खोला, डिब्बे के अन्दर सिग्रेटों को छुआ, और फिर ढक्कन बन्द कर दिया। कितनी देर वो यूं करता रहा। बार-बार फिर जैसे वो सिग्रेटों को अपनी उंगलियों के पोरों से गिनने लगा। अखबार का एक कालम खत्म हुआ, उसने दूसरा शुरू कर दिया। एक पन्ना खत्म हुआ और अगला पलट लिया। जब कभी उसका हाथ फारिग़ होता तो सिग्रेटों के डिब्बे पर जा टिकता। और डिब्बे को जैसे वो सहलाने लगता। मुझे पता था कि फरहाद सिग्रेट पीता है। दिल्ली से आते जहां कहीं भी मोटर रुकी, किसी न किसी बहाने वह मुझसे छिपकर सिग्रेट पीता रहा था। यहां आकर भी जब वो गुसलखाने से होकर आता, गुसलखाना सिग्रेट के धुंए से भरा होता। मैं चुप थी। जान-बूझकर टोक नहीं रही थी। यह सोच-कर कि शायद इसी तरह उसकी आदत छूट जाय। सिग्रेट पीना शायद कई लोगों की नज़र में बुरा नहीं। कई शरीफ़ आदमी सिग्रेट पीते हैं। कई शरीफ़ औरतें भी सिग्रेट पीती हैं। लेकिन मेरे नज़दीक सिग्रेट से सम्बन्धित यादें अत्यन्त कड़वी थीं। और मैं फरहाद की बेचैन उंगलियों को सिग्रेट के डिब्बे के गिर्द घूम रहा देख रही थी। और फिर फरहाद ने अंगूठे के साथ वाली उंगली को डिब्बे के ऊपर रखकर ढक्कन को दबाना शुरू कर दिया। वो उंगली जो शायद फरहाद को सबसे ज्यादा कष्ट दे रही थी।

वेध्याने अखबार पढ़ता हुआ फ़रहाद अनजाने ही अंगूठे से ढक्कन दबाता जाता, दबाता जाता। हैरान आंखें फाड़े मैं देख रही थी कि ढक्कन के नीचे आई उंगली लाल हो गयी थी, सूज गयी थी। घबराई हुई सांस थामे, मैं फरहाद की ओर देख रही थी कि टप-टप उसकी उंगली में से लहू के कतरे गिरने लगे। मैंने देखा और मेरी चीख निकल गई।

वेध्याने अखबार में तन्मय फरहाद को तभी पता चला जब नीचे तिपाई का कपड़ा लहू से भीग गया था।

फिर फरहाद ने मेरे सामने सिग्रेट पीना शुरू कर दिया। पहले मुझ से इजाजत लेकर पीता, एक सिग्रेट सुबह, एक दुपहर, एक शाम, एक रात को सोने से पहले। कुछ दिन यह राशन क़ायम रहा, कम से कम मेरे सामने। फिर एक दिन मैंने उसे दफ्तर टेलीफोन किया। बातें करते हुए फरहाद ने कश लगाया।

"फरहाद, तुम सिग्रेट पी रहे हो?" मैंने चिल्लाकर टेली-फोन में पूछा।

"नहीं तो," फरहाद ने झूठ बोला और सिग्रेट को ऐश ट्रे में मसल दिया।

टेलीफोन के इस सिरे पर मैं उसकी आवाज़ से पहचान जाती कि वह दूसरे हाथ से क्या कर रहा है। उसके सामने कोई बैठा है या नहीं बैठा। अगर कोई बैठा है तो वह औरत है या मर्द। मैं फरहाद को कितना पहचानने लग गई थी और शायद यही मेरी बदकिस्मती थी।

सिग्रेट का यह राशन बहुत देर नहीं चला। पहले फरहाद मुझसे मिन्नतें कर-करके, हाथ जोड़-जोड़कर, एक सिग्रेट, एक और सिग्रेट की इजाज़त लेता रहता, फिर हर समय उसकी उंग-लियों में सिग्रेट सुलग रही होती। एक खत्म होने में आती और वह एक और लगा लेता। सुबह आंख खुलने से रात आंख लगने तक सिग्रेट का उसका साथ एक क्षण के लिए भी नहीं छूटता।

मैं हैरान थी। वो फरहाद और ये फरहाद। इसके मुंह में जैसे ज़बान नहीं थी। पहली बार जब मैंने इसे मोटर में बैठे हुए

देखा, ऐसे लगा जैसे कोई जंगल का अधखिला फूल हो। और फिर वो फरहाद जिसका पिता, उसकी मां को छोड़कर किसी और से व्याह कर रहा था, जिसकी जायदाद उससे छिन रही थी। जिसकी दौलत से उसे अलग किया जा रहा था। अपने बाप के जीते-जी जो यतीम हो रहा था। वो मज़लूम फरहाद!

मुझे अब महसूस होने लगा, मैंने तो उस फरहाद से प्रेम किया था। एक सरकारी अफसर का बेटा। एक शरीफ़ मां का लाल। अल्लाह से डरने वाला। जैसे दूध पर चमेली की कली तैर रही हो।

और मैं रातें जाग-जागकर अल्ला से दुआएं मांगती रहती, रो-रोकर फरयादें करती रहती। मुझे किस गुनाह की सज़ा दी जा रही थी? मैं उस खोये हुए फरहाद को पाने के लिए कोई भी क़ीमत चुकाने के लिए तैयार थी।

हर रोज़ बाहर, हर रोज़ बाहर। मैं आई बाद में और लाहौर के इस जीवन से थक पहले गई। हर पार्टी में वही लोग, वही मर्द, वही औरतें। मर्दों के वस्त्र भी वही होते, बातें भी वही होतीं, औरतों के वस्त्र बदलते रहते, लेकिन बातें हमेशा एक तरह की होतीं। फलां कपड़ा कहां से मिलता है, किसकी मार्फत लो तो रियायत हो जाती है? किस दर्ज़ी के पास काम आजकल कम है, उससे कपड़े सिलवाओ तो सस्ते सी देता है? फलां बाल सेट करने वाली दुकान पर कोई अभी-अभी विलायत से लौटा है। फलां तेल लगाओ तो सफेद बाल काले हो जाते हैं। फलां औरत आजकल फलां मर्द के साथ हमेशा नाचती है। फलां मर्द आजकल फलां की बीवी के साथ अक्सर देखा जाता है। अमुक लड़की अमुक लड़के के साथ हमेशा खेलती है। उसके पति को उससे ठेके जो मिलते हैं। अमुक का खाविन्द आजकल फिर दौरे पर है और अमुक उसे शाम को क्लब ले भी आता है और रात को अपनी मोटर से छोड़ भी आता है। फलां फलां के साथ देखी गई, उसके पति की तरक्की के कागज़ जो उसके पास पहुंचे हुए हैं। फलां हमेशा फ्लश में अमुक के साथ हार जाता है, वो चाल ही ऐसी चलती है। फलां की बेटी ने ये कर लिया। मेरा मियां तो आजकल रात का खाना

बाहर खाता है, मैंने तो शुक्र किया है, हर साल, हर दूसरे साल कम्बख्त पिल्ले पैदा करते-करते मेरी तो जान ही सूख गई है।

और फिर अकेली देख, कई औरतें मुझे आ घेरतीं। "मैंने कहा मिसेज़ फरहाद, आपने ये बाल कैसे लम्बे किए हैं? हाय! कितने लम्बे हैं, काले-काले स्याह रेशम के लच्छों जैसे। दो चोटियों में भी नहीं संभल रहे। इतने लम्बे बालों को धोना भी तो मुसीबत होगी। मेज़ पर बैठकर धोती होगी। हाय, पर सुन्दर कितने हैं! जी चाहता है इन्हें हाथों में लेकर चूम लूं। तुम्हारी मां ने बचपन में इनपर बड़ी मेहनत की होगी। कहते हैं दिल्ली की औरतों को बाल बढ़ाने के कई नुस्खे आते हैं।"

कई औरतें तो मेरे चेहरे का एक-एक नक्श सराहते नहीं थकती थीं। मेरे पास बैठी बिट-बिट मेरी ओर देखकर आप ही आप बोलती रहतीं। "मिसेज़ फरहाद, तुम्हारी आंखें कितनी बड़ी-बड़ी हैं, काली-काली हैं, जैसे किसीने काजल लगाया हो! तुम काजल तो नहीं लगातीं। तुम्हारी नाक कितनी प्यारी है! तीखी नाक इसे कहते हैं। होंठों के एक ओर तुम्हारा यह तिल! तुम्हारे दांत जैसे मोतियों के दाने हों। जब तुम बात करती हो, मैं तो तुम्हारे होंठों की ओर देखती रहती हूं; जैसे कोई लालों की डिबिया खोले और अन्दर मोती दमक रहे हों। तुम्हारी आवाज़ कितनी मीठी है! बात कर रही तुम, मुझे यूं लगता है, जैसे कोई गा रहा हो।"

और गाने के नाम पर मेरे एक रंग आता एक रंग जाता। गाने की कहीं बात हो रही हो तो मेरी सांस रुक-रुक जाती। कोई गा रहा हो, न मैं उसे अच्छा कहती, न मैं उसे बुरा कहती। किसी लोक-गीत की कोई धुन, किसी फिल्म की कोई तर्ज़, कहीं अचानक मेरे होंठों पर आ जाती तो मैं एकदम कांप-सी उठती, अपने होंठों को दांतों के नीचे दबा लेती।

कई औरतें मेरे हाथों को अपने हाथों में लेकर देखे जातीं। मेरे अनरंगे गुलाबी-गुलाबी नाखूनों को देख-देखकर हैरान होती रहतीं। मेरी लम्बी कोमल उंगलियों के साथ खेलती रहतीं। मेरी

गोरी-गोरी कलाइयों पर हाथ फेरती रहतीं। "ये हाथ, ये कलाइयां, किसी कलाकार की हैं। मिसेज फरहाद, या तुम बहुत बढ़िया गाती हो या बहुत बढ़िया नाचती हो।"

इस तरह किसीको कहते सुनकर मैं तड़प उठती। मुझे अपने आप से भय लगने लगता। मैं बार-बार सामने बैठी हुई औरत की पलकों में देखती, कहीं उनमें शरारत तो नहीं थी और अल्ला का लाख-लाख शुक्र करती किसी बहाने वहां से उठ आती।

और कइयों को मेरे ज़ेवर पसन्द थे। मेरी अंगूठियों के मोतियों के दाम पूछती रहतीं। पत्थरों के रंग देखती रहतीं। मेरे गलेबन्द को उतार-उतारकर खुद पहनतीं और आइने के सामने खड़ी हो जातीं। कई कहतीं, बहुत भारी है, कई कहतीं, बहुत सुन्दर है, कई कहतीं, इसके दाम बहुत होंगे। ऐसे गलेबन्द तो आजकल बनते ही नहीं। सबसे ज्यादा चर्चा मेरे झुमकों की होती। जिस शाम मैं ये झुमके पहनती, हर नज़र मेरे कानों की ओर जाती। शायद ये झुमके मेरे चेहरे पर खिलते बहुत थे। शायद ये झुमके थे ही इतने निराले—लम्बे-लम्बे कीमती पत्थरों से जड़े हुए, मोतियों से पिरोए हुए। क्लब में एक रात अकेली बैठी मैं पढ़ रही थी कि एक बूढ़ी औरत मेरे पास आ बैठी। किसी नवाब की बेगम थी। कितनी देर मेरे झुमकों की ओर देखती रही। कभी इधर से झांकती, कभी उधर से झांकती। कभी उन्हें हाथ लगाकर छूने लगती। बुढ़िया अत्यन्त प्यारी औरत थी, मेरी मां की उमर की होगी। और उसके बार-बार यूं करने से, मेरे झुमकों की इस तरह दाद देने से, मुझे जैसे गुदगुदी हो रही थी। और फिर मेरी हैरानी की हद न रही, बुढ़िया छल-छल आंसू रोने लगी।

उसकी आंखों में आंसू देखकर मेरे पसीने छूट गए। मैं थर-थर कांपने लगी। और बुढ़िया मुझे यूं परेशान देखकर मुझसे प्यार करने लगी। बार-बार मुझे गले लगाती और कहती—"बेटी, ये झुमके तुम्हें मुबारक हों। बेटी, तुम कितनी प्यारी लगती हो इन झुमकों में! मेरी मां ने भी मुझे ऐसे ही झुमके दिये थे। हू-ब-हू ऐसे ही। अभी मेरे हाथों पर मेंहदी नहीं मैली हुई थी कि

मेरा घरवाला उनको जाकर कहीं गंवा आया। ये मर्द !"

उस दिन के बाद मैंने उन झुमकों को कभी नहीं पहना। लाख औरतें मुझे क्लब में याद दिलातीं, उन झुमकों को मैंने कभी हाथ नहीं लगाया। और जहां कहीं भी वह बुढ़िया मुझे मिल जाती, बड़े प्यार से मेरे पास आ बैठती और बातों ही बातों में कहती— "मुझे लगता है तुम्हें जेवर पहनने का बड़ा शौक है। औरत को अपना ज़ेवर अपने ईमान की तरह संभालकर रखना चाहिए। आजकल की ये लड़कियां तो कांच की चूड़ियां पहनकर ज़मीन पर पांव नहीं रखतीं। ज़ेवर पहनने का ज़माना तो अब गया। मेरा मर्द जब मेरे झुमके कहीं लुटाकर आया था, सात दिन पूरे मैंने पानी का घूंट नहीं पिया। मुझे चाहे उसने लाख और ज़ेवर बनवाकर दिए, बेशुमार ज़मीन, ढेरों जायदाद मेरे नाम करवाई, लेकिन उन झुमकों के लिए मैंने कभी उसे माफ़ नहीं किया। इन मर्दों का कोई एतबार नहीं। चाहे सोने का बना हो, अपने मर्द को कभी अपने ज़ेवर की ओर देखने मत देना।" उस शाम घर आकर मैंने ये सारी बातें फरहाद से कीं और हम कितनी देर हंसते रहे।

फिर एक दिन मैं क्लब में बैठी थी कि वह बुढ़िया आई और मुझे उसने अपनी बेटी से मिलाया। यास्मीन अभी कुंवारी थी। ऊंची लम्बी जैसे सरु का पेड़ हो। संगमरमर में से जैसे तराशा हुआ उसका बुत ! मैं तो उस लड़की की ओर देखती ही रह गई। एक नज़र में मैं और यास्मीन सहेलियां बन गईं।

"मैंने कई बार आपको देखा है। मेरा जी चाहा कि आपको अपनी दोस्त बना लूं। लेकिन आपका हुस्न देख-देखकर मैं झिझक जाती थी।"

और मैं यास्मीन की ओर देखती उसके अटूट यौवन की दाद दे रही थी।

यास्मीन की दोस्ती क्लब में मेरा एक बड़ा सहारा बन गई। लेकिन वह तो कुंआरी लड़की थी। हर रोज़ क्लब में कैसे मारी-मारी फिरती। और मैं अक्सर लाहौरनों के पाले पड़ जाती।

"मैंने तो अपनी मोटर अलहदा ले ली है। वह बारह बजे रात

को घर लौटते हैं, मैं एक बजे क्लब से वापस जाती हूं।"

"असल में बात यह है कि औरत मर्द से शादी करती है घर के लिए, आश्रय के लिए, पैसे के लिए, बच्चों में लिए। ये सब मर्द दे दे तो फिर चाहे कहीं झख मारता रहे।"

"मैं तो आंख मींच लेती हूं। कौन हर रोज़ घर में संकट खड़ा करे। बच्चे अब सयाने हो गए हैं।"

"मैं तो हाथ जोड़ती हूं, हमारे मर्द का भी कहीं बाहर मन लग जाए। या दफ्तर या घर। आखिर आदमी थक भी जाता है एक ही शकल को देख-देखकर।"

"मुझे तो जब पैसों की ज़रूरत होती है, होंठों पर उस रोज़ लिपस्टिक ज़रा ज़्यादा लगा लेती हूं। हमेशा तीर ठिकाने पर लगता है।"

"मैं कहती हूं, अगर हमारे मर्दों को कटे हुए बाल पसन्द हैं तो हम क्यों न बाल कटवा लें? अगर हमारे मर्दों को सिग्रेट पीने वाली अच्छी लगती है, तो हम क्यों न सिग्रेट पिएं? अगर हमारे मर्दों को औरत का जाम पकड़ा हुआ हाथ अच्छा लगता है, तो हम भी शराब पी सकती हैं।"

"इसमें हंसने की कोई बात नहीं। मैं तो अपनी बेटी को गाना भी सिखाऊंगी, नाच भी सिखाऊंगी।"

"हमारी मां सयानी थी। घर पर मास्टर रखकर उसने हमें गाना सिखाया और आजकल यह खूब काम आता है। मेरे एक गाने की क़ीमत एक साड़ी है। जब उनका जी चाहता है, पैकेट अपने साथ ले आते हैं। चाहे वो खुद सुनें, चाहे उनका कोई दोस्त सुन ले।"

सुन-सुनकर मुझे यूं महसूस होता जैसे मैं पागल हो जाऊंगी। मैं अपने कानों में उंगलियां दे लेती। मुझे अपने आसपास से बू आने लगती, वह बू जो मुझे दिल्ली की उन तंग गलियों में से आया करती थी। मेरा दम घुटने लगता। ठीक वैसे जैसे दिल्ली के उस बाज़ार में से गुज़रते हुए लगता था। मुझे तो अपने आगे-पीछे बैठी हुई औरतें यूं महसूस होतीं जैसे मैंने उनको कहीं देखा हो,

शायद दिल्ली के उस बाज़ार में ।

और मैं खोई-खोई-सी बैठी रहती । मैं अपने दिल से पूछती—'क्या फर्क है, इन औरतों में और उन औरतों में ? क्या फर्क है घर में और बाज़ार में ?'

क्लब की उस ज़िन्दगी में यास्मीन ही मेरा एक सहारा थी। नहीं तो मुझे लगता जैसे मैं पागल हो जाऊंगी । यास्मीन मिलती तो मुझे लगता जैसे ठण्डा-मीठा हवा का झोंका आया हो, जैसे गर्मियों की सुबह कोई शबनम के मोतियों पर नंगे पांव टहलने लगे । यास्मीन कितनी खूबसूरत थी, कितनी प्यारी थी ! अनखिली कली । अनबिंधा मोती ।

मैं यास्मीन के गुण गाया करती और वह मेरे । और हमारी ये दोस्ती सारे लाहौर में मशहूर हो गई ।

३

यास्मीन ने मुझे एक अजीब कहानी सुनाई ।

बात यूं हुई, एक शाम फ़रहाद को एक पार्टी में जाना था। जो रात में देर तक चलने वाली थी । जब कभी वह इस तरह की पार्टी पर जाता, हमेशा अगली सुबह को लौटता और फ्लैट में अकेली मुझे अजीब-अजीब लगता था । उस शाम मैंने यास्मीन को बुला भेजा । यास्मीन पहले भी एक-दो बार हमारे यहां आकर रही थी । जब मैं बहुत उदास होती तो यास्मीन की संगति में मेरा मन बहल जाता ।

उस दिन यास्मीन की अम्मी हमारी ओर आ रही थी और शाम के पांच बजे के करीब उसे हमारे यहां छोड़ गई ।

सारी शाम हमारी अपनी थी । हम माल रोड पर घूमने के लिए निकल गईं । मुझे कुछ एक-दो चीज़ें भी खरीदनी थीं । दूकान से दूकान, घंटों चीज़ों को देखकर खरीदने की मेरी आदत है । एक चीज को मैं सात दूकानों पर देखती और फिर कहीं फैसला कर पाती । यास्मीन परेशान होने लगती । लेकिन उस शाम हमें और

कुछ करना नहीं था । हम एक दूकान से निकलतीं और दूसरी दूकान में घुस जातीं । फिर-फिरकर जब हम थक गईं तो माल रोड के एक रेस्ट्रां में काफी पीने के लिए जा बैठीं ।

सांझ हो रही थी । रेस्ट्रां में शाम की चाय पीने वाले जा चुके थे और रात का खाना और खाने से पहले शराब पीने वाले ग्राहक अभी नहीं आए थे । हाल में कुर्सियां खाली थीं । हम अन्दर जाकर बैठ ही पाई थीं कि यास्मीन ने दूर अकेली बैठी एक लड़की को मुस्कराकर देखा ।

"यह कौन है ?" मैंने यास्मीन से पूछा । लड़की सुन्दर थी, लेकिन यूं अकेली बैठी अजीब लग रही थी । उसकी मेज़ पर सामने पानी का एक गिलास रखा था, एक बड़ा-सा हैंडबेग पड़ा था । यास्मीन की ओर मुस्कराकर देखने के बाद अपने हैंडबेग में से उसने आइना निकाला और अपना मेक-अप ठीक करने लगी ।

"यह कौन है, तेरी सहेली ?" मैंने यास्मीन से फिर पूछा । मुझे किसी औरत का यूं सरे बाज़ार बैठकर अपने होंठों को रंगना, अपने गालों को लाल करना ज़हर लगता है । लेकिन यास्मीन उस लड़की की ओर देखे जा रही थी । उसके बिल्कुल नये फैशन के कटे हुए बाल, उसके सीने का उभार, उसकी कमीज़ का रंग, उसका जालीदार दुपट्टा जो उसके कंधे को ढक भी रहा था और उसको दिखा भी रहा था ।

"यह कौन है ? तुम्हारी कोई पक्की सहेली जान पड़ती है !" मैंने यास्मीन को फिर छेड़ते हुए पूछा ।

और फिर काफ़ी पीते-पीते यास्मीन ने मुझे उस लड़की की कहानी सुनाई—

"इस लड़की का नाम जनक है । बचपन से यह मेरे साथ पढ़ी है । मिडिल, मैट्रिक और फिर कालेज । कालेज में आकर इसने पढ़ना छोड़ दिया । इसका पिता किसी राजनीतिक आन्दोलन में हिस्सा लेने के कारण पकड़ा गया था और इसकी मां ने जनक की पढ़ाई छुड़वा दी थी । क्या स्कूल में और क्या कालेज में इस लड़की के मुंह में जैसे ज़बान न हो । कभी इसकी ऊंची

ग्रावाज किसीने नहीं सुनी थी। बहुत सुन्दर गाती है। उन दिनों हमेशा भजन गाती थी। मीरा, सूरदास, कबीर। हम लाख यत्न करतीं, कभी कोई सिनेमा का गीत सुना दे या कोई गज़ल ही कभी हो जाए। पर यह लड़की नाम न लेने देती। हम बहुत तंग करतीं तो रोने लगती। खादी की कमीज़, खादी की सलवार ग्रौर ऊपर खादी का मोटा दुपट्टा लेती थी; ग्रौर मज़ाल है कभी दुपट्टा इसके सिर से उतर जाए। स्कूल के ज़माने में हम ग्रल्हड़ लड़कियां खिड़कियों में जाकर खड़ी हो जातीं ग्रौर सामने सड़क पर ग्रा-जा रहे लोगों को देखती रहतीं। इसे हमेशा यह बुरा लगता था। इसकी मां धार्मिक ख्यालों की थी। इसका पिता भी कोई सोशल वर्कर किस्म का ग्रादमी था। ग्रब तो बेचारे दोनों मर गए हैं। इनका घर शहर में कहीं होता था। स्कूल, कालेज हर रोज़ यह तांगे में ग्राती थी। इसके रास्ते में हुस्न का बाज़ार पड़ता था। ग्रौर इसके साथ तांगे में हमारी क्लास की एक ग्रौर लड़की भी ग्राया करती थी। वह बताती कि उस बाज़ार में गुज़रते हुए यह मुंह-सिर लपेट लिया करती थी। एक दिन यह तांगे में ग्रकेली ग्रा रही थी कि उस बाज़ार में से गुज़रते हुए किसीने इसपर ग्रावाज़ कसी ग्रौर जब तांगा कालेज में पहुंचा, पिछली सीट पर यह बेहोश पड़ी थी। इसके हाथ-पांव ठंडे थे। चार लड़कियों ने इसे उठाकर तांगे में से उतारा। हमारी सहेली, जो इसके साथ तांगे में ग्राया करती थी, हमेशा इसे छेड़ती—'चाहे मुंह-सिर लपेट लेती है, लेकिन ग्रन्दर ग्रांख बिट-बिट खोले देखती रहती है, ग्राती बार भी, जाती बार भी। उस दिन के बाद हमने इसे कभी नहीं छेड़ा। लेकिन यूं लगता है जैसे हमारी वह सहेली ठीक ही कहती थी। वह जनक ग्रौर यह जनक! ग्राजकल हमारे कालेज के ज़माने की सब लड़कियों को यकीन है कि ज़रूर खादी के उस दुपट्टे में से वह एक-एक कोठे की ग्रोर झांकती थी ग्रौर वहां की एक-एक ढब इसके ग्रंग-ग्रंग में रचती रहती।"

यास्मीन मुझे कहानी सुना जा रही थी ग्रौर मेरे पसीने छूट रहे थे। मेरी ग्रांखें जैसे पथराई जा रही थीं।

यास्मीन ने बात अभी खत्म नहीं की थी कि मैं काफी के पैसे मेज़ पर रखकर उठ खड़ी हुई। यास्मीन मेरे साथ बाहर आ गई। मेक-अप खत्म करके यास्मीन की सहेली अब सिग्रेट पी रही थी। अपने मुंह के सामने से सिग्रेट के धुंए को हाथ से हटाते हुए यास्मीन को उसने दूर से ही खुदा हाफ़िज़ कहा। जैसे लाख यादें उसकी पलकों में छिपी हुई हों।

मुझे लगता जैसे मैं बीमार-बीमार-सी हूं।

उस रात खाना खाकर हम बरामदे में आ बैठीं। खाने के कमरे में ज़रा-सी मेरी तबियत खिली थी, लेकिन अब मैं फिर वैसी की वैसी उदास हो गई थी और यास्मीन इधर-उधर की बातें करती मेरा दिल बहला रही थी।

"मुझे इश्क होता ही नहीं।" अब यास्मीन अपनी कहानी बता रही थी। "मेरी सूरत-शक्ल अच्छी है, अच्छे घर की हूं। मां-बाप की एक ही एक बेटी हूं। कई लड़के मेरे पीछे-पीछे फिरते हैं, पर मुझे किसीसे प्यार नहीं होता। कई बार मुझे कोई मर्द पसन्द आता है। मैं उसके नज़दीक होती हूं। एकदम वह इतना अच्छा-अच्छा, इतना भलामानस, इतना शरीफ़-सा हो जाता है कि मुझे उससे घिन आने लगती है। सिग्रेट वो नहीं पीता, शराब को वो हाथ नहीं लगाता, सिनेमा का वह ज़्यादा शौकीन नहीं। जल्दी सोता है, जल्दी जागता है। नफ़रत! झूठ! जैसे छुईमुई का पौधा हो। उसकी ओर हाथ ले जाओ और वह बन्द हो जायेगा। मैं तो शराबी मर्द की बीवी बन सकती हूं। बदमाश मर्द की बीवी बन सकती हूं, लेकिन झूठे मर्द के साथ मेरा एक दिन गुज़ारा नहीं हो सकेगा। मुझे तो कई बार शराब पीने वाले मर्द अच्छे लगते हैं। शराब पीकर बिट-बिट पराई औरतों की ओर देखते हुए। शराब पिए हुए एक बार क्लब में एक आदमी लड़खड़ाते हुए कदमों से मेरी ओर आया और मुझसे कहने लगा—'मैं तुम्हारे साथ नाचना चाहता हूं।' मुझे उसपर इतना लाड़ आया कि मैं मुस्कराती हुई उठ खड़ी हुई और वह सारी शाम उसके साथ नाचती रही।

उस दिन मैं एक सहेली के साथ क्लब आई थी। मुझे शराब की मदहोशी लाख बार उस शराफत से ज्यादा पसन्द है जिसके पर्दे के पीछे हमारे मर्द हमारी औरतों से दिन-रात अपने आपको धोखा देते रहते हैं। अभी तक होश में किसीकी मज़ाल नहीं हुई कि नवाब साहब की बेटी को अपने साथ नाचने के लिए कहे।"

"यास्मीन! आज तू कैसी बातें कर रही है?" मैं हैरत से उसके मुंह की ओर देख रही थी।

"मैं तो जिसके साथ ब्याह करूंगी," यास्मीन अब भी बोले जा रही थी—"एक बार उसे बेहोश करके देखूंगी। बेहोशी में उसके बटन खोलकर उसकी बनियान हटाकर उसकी छाती का रंग देखूंगी। मदहोशी में उससे पूछूंगी—मेरी आंखों में उसे क्या नज़र आता है। और अगर उसे तब भी मैं शीरीं लगी तो फिर मैं उस फरहाद के साथ ब्याह करूंगी।"

रात ज्यादा हो गई थी। मैं चाहती थी हम सो जाएं। देर-रात की पार्टी से जिस हालत में फरहाद लौटता था, न मैं खुद उसको देख सकती थी, न मैं चाहती थी यास्मीन उसे देखे। पर यास्मीन को पता नहीं क्या हो गया था, बोले जा रही थी, बोले जा रही थी।

"मेरे अब्बा जब शराब पीते हैं, मुझे उनपर इतना प्यार आता है! शराब पीकर वो रोते हैं। मेरी मां के कदमों में बार-बार सिर रखकर उससे माफियां मांगते हैं। एक बार हमारा नौकर कहीं से ठर्रा पीकर आया। नशे में मदहोश उसने हमारे घर की सारी चोरियों का इकबाल कर लिया, और यह भी बता दिया कि किस कोठी की आया को वह अपना माल खिलाया करता था।"

यास्मीन बोले जा रही थी, बोले जा रही थी कि सामने सड़क पर मुझे अपनी मोटर दिखाई दी। मैं घबरा के उठ खड़ी हुई। "चल यास्मीन, अन्दर चलकर लेट जायें। फरहाद जरूर शराब पीकर आया होगा और शराब की बू मुझे जहर लगती है। लेटे-लेटे हम सोने का बहाना करेंगी और वह आकर अपने कमरे में पड़ जाएगा।"

"मुझे तो शराब के नशे में लड़खड़ाते किसी शरीफ़ आदमी

के क़दम बड़े प्यारे लगते हैं।" यास्मीन मुझे पकड़कर बरामदे में खड़ी हो गई।

फरहाद ने बेहद शराब पी हुई थी। उसके क़दम अजीब तरह से डगमगा रहे थे। मैंने अल्ला का लाख शुक्र किया, वह सीधा अपने कमरे में गया। मैं और यास्मीन चुपके से आंखें बन्द किए अपने-अपने पलंग पर लेटी हुई थीं। कितनी देर फरहाद अपनी थरथराती आवाज़ में कुछ गुनगुनाता रहा। यूं लगता था जैसे वह कपड़े बदल रहा हो। दोनों कमरों के बीच के दरवाज़े से शराब की बू मेरी नाक को जैसे जला रही थी। आधा घंटा गुज़र गया, पौन घंटा गुज़र गया। यास्मीन सोने का बहाना करती सो चुकी थी। जवानी की नींद में वह बेसुध पड़ी थी। उसकी मोटी भारी चोटी उसके तकिए पर फैली हुई थी। साथ के कमरे में से रोशनी छन-छनकर यास्मीन की चोटी पर एक अजीब तरह से पड़ रही थी।

शराब की बू में कभी आंखें खोलती, कभी आंखें बन्द करती। मैं सो नहीं पा रही थी कि मुझे लगा कि जैसे साथ के कमरे का पर्दा हिला हो। हां, पर्दा तो हिला था और कुरता-पायजामा पहने फरहाद हमारे कमरे में घुस आया था। मैंने एकदम आंखें मींच लीं और फिर मुंदी-मुंदी पलकों में से मैंने देखा, दरवाज़े में खड़ा वह सोई पड़ी यास्मीन की ओर देख रहा था। कितनी देर वह यूं नशे में चूर उसे देखता रहा। मेरा जी चाहता, उठकर मैं उसे एक चांटा दे मारूं।

मैं चाहती थी कि मैं ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाऊं, लेकिन मुझमें जैसे सकत नहीं रही थी। फरहाद आगे बढ़ा। मैं कोशिश करती कि मैं आंखें खोलूं, पर मेरी पलकें नहीं खुल रही थीं। फरहाद और आगे बढ़ा। मैं चाहती थी, अपनी बांहों को हिलाऊं, लेकिन जैसे मेरा शरीर पानी-पानी हुआ पड़ा था। फरहाद यास्मीन के पलंग पर झुका और उसकी चोटी को उठाकर उसने अपने होंठों से लगा लिया। फरहाद ने यास्मीन के बालों को हाथ ही लगाया था कि वह चीखकर उठ खड़ी हुई। फरहाद भागकर अपने कमरे में चला गया। उसने बत्ती बुझा दी।

सारी रात यास्मीन मेरी छाती के साथ लगी फूट-फूटकर रोती रही। यास्मीन रोती रही और उस बन्द कमरे में मैं कोसती रही अपनी क़िस्मत को, अपने सितारों को। सारी की सारी वो काली रात!

४

एक दिन फरहाद ने दफ्तर से लौटकर बताया कि वह तीन दिन के लिए दौरे पर जा रहा था।

मेरे दिल ने कहा—'तुम भी इसके साथ चलो।' पर फिर मुझे शर्म-सी आ गई। मैं अपनी मां की तरह अपने शौहर की चौकीदारी नहीं करूंगी। एक नौजवान हसीन लड़की की ग़ैरत कब ये गवारा कर सकती है! लेकिन बार-बार मेरा दिल मुझे और की और ही बातें कह रहा था। और मुझे अपने आप पर शर्म आने लगी। मैं भी आम औरतों की तरह शक्कीमिजाज हो रही थी। एक दफ्तर का अफसर दौरे पर जा रहा था और उसकी तंगदिल घर-वाली अपने बुरे-बुरे ख्यालों में बहकी चली जा रही थी।

और फिर फरहाद दौरे पर चला गया। उस दुपहर यास्मीन से मेरी मुलाकात हुई। फरहाद दौरे पर था, मैं अकेली थी, तो भी यास्मीन ने झूठे मुंह ही हमारे यहां आने के लिए न ही कहा, न ही उसकी अम्मी का टेलीफोन आया मुझे अपने घर बुलाने के लिए। किस-किसके गुनाहों की सजा इन्सान को झेलनी होती है! उस शाम अकेली अपने बरामदे में बैठी बार-बार मेरी आंखों में आंसू छलक-छलक आते।

सांझ हो रही थी कि मैंने देखा कि लान के सामने फ्लैट वाली हमारी हिन्दू पड़ोसिन मेरी ओर आ रही है। पतली लम्बी फ़ाख्ता की तरह मासूम। उसकी आंखों में सदा शराफत झलकती थी। पतली लम्बी लड़कियां मुझे अच्छी लगती हैं और किसी भी चेहरे के भोलेपन के लिए मैं तो जान तक कुर्बान कर सकती हूं।

"आइये, मिसेज राम!" हमारी पहले भी कई बार मुलाकात

हो चुकी थी लेकिन ग्राना-जाना ज्यादा नहीं था।

"मैंने सुना कि ग्रापके साहब दौरे पर गए हैं ग्रौर मैंने सोचा ग्राप ग्रकेली होंगी।" हम कितनी देर इधर-उधर की बातें करती रहीं। मिसेज़ राम बार-बार हमारी जोड़ी की प्रशंसा करती, बार-बार फरहाद को ग्रच्छा-ग्रच्छा कहती, मुझे ग्रच्छा-ग्रच्छा कहती। उसने कभी हमारे घर से ऊंची ग्रावाज़ नहीं सुनी थी। कहती—शाम को जब हम दोनों सजकर बाहर निकलते हैं तो वह खिड़की में खड़ी हमेशा हमें देखती रहती थी। यौवन हो, सुन्दरता हो ग्रौर प्रेम करने वाला पति हो, तो फिर ग्रौरत को किसी चीज़ की ग्राव-श्यकता नहीं होती।

"मैं तो कई बार भगवान के ग्रागे हाथ जोड़ती हूं।" मिसेज़ राम कितनी प्यारी बातें कर रही थी, "मैं तो कई बार ग्रपनी पूजा के बाद भगवान से विनती करती हूं—हे भगवान, घर-घर में इस तरह की जोड़ियां हों। पति-पत्नी में एक पहचान होनी चाहिए। वो पहचान जो मुझे तुम दोनों की नज़रों में दिखाई देती है। पति-पत्नी में एक लगन होनी चाहिए। जब मैं ग्रापको बरा-मदे में बैठी हर शाम उनकी प्रतीक्षा करते देखती हूं तो मुझे ग्राप-पर बड़ा प्यार ग्राता है! ग्रौर फिर ग्रापका इकट्ठे यहां बरा-मदे में बैठकर चाय पीना! ग्राखिर एक ग्रौरत एक मर्द से ग्रौर मांगती भी क्या है! ग्रौरत को मौका मिले कि वह ग्रपने हाथ से ग्रपने पति के लिए चाय बनाकर उसे पिलाये ग्रौर बस! मोटर में बैठते हुए जब वह ग्रापके लिए मोटर का दरवाज़ा खोलते हैं, रात को क्लब से लौटते, गराज में मोटर रखकर जब ग्राप दोनों हौले-हौले कदम इधर-उधर की बातें करते हमारे फ्लैट के सामने से गुज़रते हैं, ग्रक्सर वह मोटर की कुंजियों से खेल रहे होते ग्रौर ग्रापकी नज़रें धरती पर टिकी होती हैं, तो मैं ग्रपने मन से कहती हूं, ये जोड़ी कितनी खुश है, ये जोड़ी कितनी भाग्यवान है!"

ग्रौर मैं चकित बिट-बिट मिसेज़ राम के मुंह की ग्रोर ताक रही थी। ग्रौर यूं बातें करती-करती वह लौट गई।

इधर मिसेज़ राम गयी, उधर यास्मीन का टेलीफोन था।

"सुवीरा सुनो, तुमने क्या कहा था, फरहाद दौरे पर गया है ?"

"हां, हां, सुबह-सुबह वो अपनी मोटर में तीन दिन के लिए गए हैं ।"

"अच्छा ! यास्मीन की आवाज़ एकदम धीमी पड़ गई और उसने टेलीफोन बन्द कर दिया ।

मैं उठकर अन्दर चली गई । गोल कमरे में से खाने के कमरे में, खाने के कमरे से सोने के कमरे में । अजीब बेचैनी थी । बार-बार मैं अपनी चुनरी के पल्लू को वट-वटकर अपनी उंगली पर लपेट लेती ।

वाहर यास्मीन की मोटर थी ।

यास्मीन दौड़ती हुई अन्दर आई । "सुवी, तुम मेरे साथ मोटर में एक मिनट के लिए चलो ।"

"क्यों, बात क्या है ?" मैं पहले ही बड़ी परेशान थी ।

"मैं तुझे तेरा मियां दिखाना चाहती हूं, जिसे तुमने दौरे पर भेजा हुआ है ।"

मैं चुप हो गई । आखिर वही बात हुई जिसका मुझे डर था । मैं बुरी से बुरी बात अपने बारे में सोचा करती, लेकिन जब बात सचमुच होने लगती तो उससे भी बुरी होकर सामने आती ।

यास्मीन के साथ जाकर मैं क्या कर सकती थी ! "यास्मीन, तुमसे गलती हुई होगी । फरहाद दौरे पर गया हुआ है ।"

"मैं कहती हूं फरहाद बदकिस्मत है । तेरी जैसी बीवी को जो आदमी धोखा दे वह कभी खुश नहीं होगा ।" यास्मीन की आंखों में आंसू थे । गुस्से में वह कांप रही थी ।

और फिर मुझे खींचती हुई वह अपनी मोटर में ले गई । माल रोड, बाग, कालेज और फिर मोटर नहर के किनारे जा रही थी । हम बहुत आगे नहीं गये थे कि सामने मेरी मोटर खड़ी दिखाई दी, कासनी रंग की शेव । यह मोटर मेरी अम्मी ने अपनी बेटी के आराम के लिए दी थी । डी० एल० ३१४१ । अभी मैं अपने आपको सम्हालने भी नहीं पाई थी कि रात के अंधेरे में यास्मीन की मोटर की रोशनी नहर के किनारे एक बार और पड़ी । हां, वही था । वह और यास्मीन की सहेली जनक, जिसे हमने उस रोज़ रेस्टोरेंट

में अकेली किसीके इन्तज़ार में बैठी देखा था। घास पर कुहनियों के भार औंधे लेटे बातें कर रहे थे।

और फिर मैं यास्मीन के कन्धे पर ढेर हो गई। मेरी आंखों के सामने घुप्प अंधेरा छा गया।

५

कुछ इसी तरह ज़िन्दगी गुज़र रही थी कि मुझे मां बनने की आस लग गई। पहली बार जब मुझे इसका निश्चय हुआ तो मुझे एक धक्का-सा लगा। कुदरत का यह एक अजीब मज़ाक था। जैसे कोई दलदल में मुश्किल से क़दम-क़दम सम्हालकर चल रहा हो और कोई उसके मुंह-माथे पर आकर कीचड़ पोत दे। मुझे अत्यन्त घबराहट हुई। इतनी घबराहट मुझे पहले कभी भी नहीं हुई थी। मेरा जी चाहता अपने आपको उलटकर बाहर फेंक दूं। अकेली बन्द कमरों में दीवारों के साथ सर पटकती रहती। खिड़कियों की सलाखों को पकड़कर अपने-आपसे बोलती रहती। मुझे लगता जैसे मुझे जकड़ा जा रहा हो, इस्पात की मोटी-भारी सांकलों से, जिन्हें कोई तोड़ नहीं सकता। मुझे लगता जैसे मुझे एक गुफा में क़ैद कर दिया गया हो, जिसके बाहर निकलने का केवल एक ही रास्ता था और उस रास्ते पर बदनामियां खिलखिलाकर हंसने के लिए खड़ी थीं। निन्दा, चुगली, फरेब, धोखा, अन्याय की सड़ांध आ रही थी। यूं लगता जैसे मैं अपने आपको कुछ कर लूंगी। कितने-कितने दिन एक निवाला तक मेरे गले के अन्दर न जाता। चाय पीती और चाय को उलट देती।

मैंने लुबना को लिखा। लुबना ने मुझे अत्यन्त प्यार-भरी चिट्ठी जवाब में भेजी। जब भी मैं उसे बुलाऊं, वह मेरे पास आने के लिए तैयार थी। मैंने अम्मां को लिखा। अम्मी ने एक आया मेरी देख-भाल के लिए भेज दी। चमेली बड़ी प्यारी औरत थी। हर बात का ख्याल रखती। मैं कब सोती हूं, कब जागती हूं, मेरे माथे पर बल क्यों पड़े हैं, मेरे होंठ आज रूखे-रूखे-से क्यों हैं।

घर-बाहर चमेली मेरे साथ रहती। मैं ऐसे खड़ी नहीं हो सकती थी, मैं ऐसे चल नहीं सकती थी, मैं इस तरह लेट नहीं सकती थी। चमेली कभी मेरी मालिशें करती, कभी मेरे पांव दबाती रहती।

चमेली के अपने पेट में भी बच्चा था। और कुछ दिन जब मैं उसके साथ जरा ज्यादा खुल गई मैंने उसको बता दिया कि मैं उससे उसके बच्चे का दूध नहीं छीनूंगी। अपने होने वाले बच्चे को मैं अपनी छाती से दूध पिलाऊंगी। चमेली की तनख्वाह उसे वैसी की वैसी मिलती रहेगी और उसके बच्चा होने के बाद उसको बढ़ा भी दिया जायेगा, उसकी ज़रूरतें जो बढ़ जायेंगी।

यास्मीन का ब्याह होने वाला था। लड़के ने लड़की को नहीं देखा था। लड़की ने लड़के को नहीं देखा था। यास्मीन कहती, मर्द सारे एक-से होते हैं। ब्याह से पहले एक तरह के, ब्याह के बाद एक तरह के। और आजकल यास्मीन के ब्याह की तैयारियों में मेरे दिन गुज़रने लगे। सुबह-शाम हम शापिंग के लिए निकली रहतीं, कभी यास्मीन की अम्मी हमारे साथ होती, कभी हम अकेली घूमती रहतीं।

फिर एक दिन लाहौर में वावेला मच गया। लाहौर के हवाई अड्डे से एक जहाज़ उड़ा ही था कि कोई दो मील की दूरी पर उसमें आग लग गई। सारे के सारे मुसाफिर लाहौर के थे और उनमें से एक भी नहीं बच सकता था। इन मुसाफिरों में जनक भी थी। मैंने सुना और मेरी आंखों में आंसू आ गए। कितनी देर बेचैन मैं अपने बरामदे में टहलती रही। उस दिन दुपहर का खाना मुझसे नहीं खाया गया। मैं हैरान होती, बार-बार अपने आपसे पूछती, उस लड़की के साथ मेरा क्या रिश्ता था? फिर भी मैं उदास-उदास थी। उसे बस मैंने दो बार देखा था। पहली बार होटल में बैठी किसीका इन्तज़ार कर रही थी। चाहे वह मेरा शौहर ही हो जिसकी वह राह देख रही थी। और दूसरी बार नहर के किनारे घास पर रात के अंधेरे में कुहनियों के बल लेटी मेरे घरवाले से बातें कर रही थी जिसे उसने मुझसे चुराकर तीन

दिन अपने होटल में रखा हुआ था। वह कांटा मेरे रास्ते से निकल गया था। मुझे तो खुश होना चाहिए था। लेकिन मैं परेशान थी। बार-बार मैं अपनी चुनरी के पल्लू को उंगली पर लपेटती, बार-बार उसे खोलती। और फिर यास्मीन का टेलीफोन आया। उसने भी खबर सुनी थी। कितनी देर हम जनक के बारे में बातें करती रहीं। मरे हुए के साथ सब वैर खत्म हो जाते हैं। हम दोनों उदास-उदास थीं।

जनक की बातें सुनकर मुझे लगता जैसे उस लड़की को मालूम था कि उसका अन्त जल्दी होने वाला था। और जो कुछ उसे देखना था उसने उतावली में देख लिया। जो कुछ उसे करना था उसने जल्दी-जल्दी कर लिया। जब ज़िन्दगी ने उसे कोई चीज़ देने में देर की, उसने झपट्टा मारकर उसे छीन लिया। जो ज़िन्दगी उसकी अपने माता-पिता की कड़ी निगरानी में गुज़री थी उसका उसे बदला चुकाना था। जो ज़िन्दगी उसकी बेवक्त मौत ने उससे छीन लेनी थी उसका घाटा उसे पेशगी पूरा करना था और उसने जी भरकर फ़ैशन कर लिए, जी भरकर कपड़े पहन लिए, जी भरकर दुनिया देख ली, जी भरकर मर्दों के साथ दोस्ती कर ली।

और फिर आंख झपकने में हवाई जहाज़ के पेट्रोल में जलकर जान दे दी।

शाम के अखबार में बाक़ी लोगों के साथ जनक की तस्वीर भी निकली। हाय ! कितनी सुन्दर लड़की थी !

और फिर मुझे ये चिन्ता खाने लगी, इस घटना का फरहाद पर क्या असर होगा। डर के मारे सारा दिन मैंने उसे दफ़्तर टेलीफोन नहीं किया। शाम को उसके आने के वक्त कभी मैं कुछ करने लगती और कभी कुछ।

और फिर फरहाद आया। मैं तो हैरान ही हो गई। वैसे का वैसा सिग्रेट पीता रहा, हंसते-हंसते मोटर से निकला। चाय-चाय पुकारता मुंह धोता रहा। चाय-चाय करता कपड़े बदलता रहा। और चाय पीकर हम क्लब चले गए। वहां सब लोग हवाई जहाज़ के हादसे की चर्चा कर रहे थे। फरहाद भी उनमें शामिल हो

गया। क्लब में लोग शराब पीते, जुआ खेलते, एक-दूसरे की बीवी के साथ हंस-हंसकर बातें करते, बीच-बीच में हादसे में मरने वालों का अफ़सोस भी कर लेते।

६

यास्मीन जा रही थी। हमारे यहां कोई आने वाला था। एक जगह खाली हो रही थी, एक जगह भर रही थी। यह अभी नहीं पता था, जाने वाली कितना खला पैदा करके जा रही थी, आने वाला कितनी बहारें लेकर आ रहा था।

लेकिन एक ख्वाहिश आजकल मुझे दिन-रात कुचेटे जा रही थी। मैं चाहती मेरा होने वाला बच्चा यतीम न हो। जैसे इस घर में क़दम रखते ही मेरा सुहाग लुट गया था। मैं चाहती थी, किसी तरह मेरे बच्चे को वह खुशी मिल सके जो चमेली के बच्चे के लिए इन्तज़ार कर रही थी। मैं चाहती थी कि जब मेरा बच्चा आए, उसके सिर पर उसके पिता का हाथ हो।

और इस नई ख्वाहिश के लिए मैं सब कुछ कुर्बान करने के लिए तैयार थी।

मैं सोचती, अगर मैं भी सिग्रेट पीने लगूं, अगर मुझे भी शराब से कोई परहेज़ न हो, अगर मैं भी अपने बालों को कटवा लूं, तो शायद फरहाद बाहर झख न मारे। लेकिन ये सब कुछ मुझसे कैसे हो सकेगा ? इस तरह का ख्याल आते ही मुझे अपने आप में से दुर्गन्ध आने लगती।

अब जब फरहाद सिग्रेट पी रहा होता, उसके हर बार नया सिग्रेट लगाने पर मैंने परेशान होना छोड़ दिया था। गोल कमरे सोने के कमरे, खाने के कमरे में सिग्रेट पीते हुए उसका जगह-जगह राख झाड़ना मुझे बुरा लगना बन्द हो गया था। मैंने हर कमरे में ऐश ट्रेज़ लाकर रख दीं, उसकी मर्ज़ी होती उनका प्रयोग करता, नहीं तो कालीनों पर, दरियों पर राख झटक देता। मेरे माथे पर अब कभी बल नहीं पड़ा। अब तो हमेशा मैं घर में सिग्रेट के

डिब्बे मंगवा कर रखती और वक्त-वेवक्त जब उसे ज़रूरत होती, मुस्कराती हुई उसे अन्दर से सिग्रेट निकाल देती। अब तो जब कई बार वो सिग्रेट पीने लगता, मैं दियासलाई जलाकर उसका सिग्रेट जला देती। अब मेरे पास बैठे सिग्रेट पर सिग्रेट पी रहे फरहाद के धुंए से मेरा दम न घुटता, न ही मुझे खांसी आने लगती। एक दिन किसी कारण फरहाद ने अपना जल रहा सिग्रेट मुझे पकड़ाया और जितनी देर उसके हाथ फ़ारिग़ नहीं हुए मैंने सिग्रेट को इस तरह अंगुलियों में पकड़े रखा जैसे सिग्रेट पीने वाले सिग्रेट को पकड़ते हैं।

शराब मेरे घर में नहीं आ सकती थी। ये फैसला कई वरस हुए मैंने इस घर में आने से कुछ दिन वाद किया था और अभी तक उसपर जमी हुई थी। अब ये वन्दिश भी मैंने हटा दी। रंग-रंग की शराव मैंने खुद लाकर घर रख छोड़ी थी। जब फरहाद की मर्ज़ी होती पी सकता था। कभी-कभी जब मुझे कहता तो मैं खुद उसे जाम बनाकर पेश करती थी। फरहाद मेरी ओर देख-देखकर हैरान होता। मैं कितनी वदल रही थी! मैं कितनी अच्छी हो रही थी उसकी नजरों में!

उस साल दिवाली वाले रोज़ और दिवाली के वाद के दो रोज़ फरहाद घर नहीं लौटा। मर्दों के क्लब में बैठा जुआ खेलता रहा था। वार-वार मैं टेलीफोन करती, वार-वार ये जवाव मिलता— साहब एक घण्टे तक आयेंगे। मेरे लाख ज़िद करने पर भी उसने टेलीफोन पर आकर वात न की। आखिर इन्तजार करते-करते जव मैं थक गई तो मैंने टैक्सी मंगवाई और स्वयं क्लव गई। मैंने उसे वाहर बुलवाया। खुद मैं टैक्सी में ही बैठी रही। पहले भी वो दिवाली वाले दिन रात-रात-भर जुआ खेला करता था। लेकिन आज तो तीन दिन उसे क्लव में बैठे हो गए थे। जब फरहाद वाहर आया, उसकी आंखें नींद में लाल हो रही थीं, सूजी हुई थीं। पीला ज़र्द उसका मुंह जैसे खून की एक बूंद भी उसमें न रही हो।

"आखिर हुआ क्या है?" मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।

फरहाद दो दिन में बीस हज़ार रुपया हार चुका था। और फिर फरहाद फूट-फूटकर रोने लगा। मेरे सामने मेरा पति रो रहा था। मेरे सामने मेरे होने वाले बच्चे का बाप रो रहा था। और मैं घर लौटी। बीस हज़ार रुपये का चैक काटकर क्लब में से अपने पति को छुड़ा लाई।

बीस हज़ार रुपया मेरी मां ने चलते समय मुझे दिया था। यह रकम आज तक वैसी की वैसी पड़ी थी। मैंने इस रकम को अपने बच्चे के पिता की एक मुस्कान पर कुर्बान कर दिया और मैं खुश थी।

हर रोज़ जब फरहाद दफ्तर जाता, मुझे लगता पता नहीं वह लौटकर आयेगा या नहीं। कई बार मैं सोचती, दोष शायद मुझ में ही था। मैं क्यों हर समय इस तरह की बात सोचती रहती थी। लेकिन सच यह था कि फरहाद अभी तक मेरा नहीं बना था। मैंने इतना कुछ उसके लिए किया, मैंने हर ओर से हार मान ली, तो भी मेरा दिल कहता जैसे कोई मुझे लूट रहा हो, मेरा हक मुझसे छीन रहा हो। अन्दर ही अन्दर मैं लहू की घूंट पी रही थी, हर रोज़, हर रोज़। लेकिन मैंने अपने होंठों पर कभी शिकायत नहीं आने दी। मैंने फरहाद को कभी बुरा नहीं कहा।

फरहाद को उस दिन दफ्तर गए बहुत देर नहीं हुई थी कि बरामदे में टहलती हुई मैं बेहद बेचैन-सी थी। फिर अपने दिल को बहलाने के लिए मैंने अपने बालों को कंघी करनी शुरू कर दी। मेरी चोटियां इतनी भारी थीं, मैं उनको खोलती-खोलती थक जाती। गज़-गज़ लम्बे अपने बालों को कंघी कर रही उस दिन बार-बार मेरी कंघी उलझ-उलझ जाती और मैं खीझने लगी।

और फिर पता नहीं मेरे दिल में क्या आया, जल्दी-जल्दी मैं अन्दर गई, कपड़े बदले, जूता पहना और मैं बाज़ार जाने के लिए तैयार थी।

सामने सड़क का मोड़ घूमकर माल रोड; और माल रोड पर मैं अपने बाल कटवाने जा रही थी।

मेरी आंखों के सामने बार-बार नहर के किनारे कुहनियों के

सहारे लेटी जनक का चित्र आता, उसके कटे हुए वालों के गुच्छे उसके मुंह पर पड़ रहे थे।

जैसे किसीके सर पर खून सवार हो, कुछ इस तरह मेरी हालत थी। मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। खुद-ब खुद मेरे क़दम मुझे खींचकर ले जा रहे थे। मेरा चेहरा तमतमा रहा था। मेरे हाथों में से जैसे चिंगारियां फूट रही हों। बटुआ पकड़े, चुनरी में अपनी मोटी-मोटी वालों की चोटी को ढके, मैं एक अंग्रेज हेयर-ड्रेसर की दूकान में जा घुसी।

"मैं आपके लिए क्या कर सकती हूं ?" एक बूढ़ी अंग्रेज औरत मुस्कराती हुई मेरी ओर आई।

मैं झिझक-सी गई।

"आपके बाल कितने प्यारे हैं !" उसकी नज़रें जैसे बार-बार मेरी चोटी पर, मेरे घने काले बालों पर पड़ रही थीं।

"मैं इन्हें कटवाना चाहती हूं।"

"क्या ?" दूकान की मालकिन बुढ़िया अंग्रेज औरत की छाती में जैसे किसीने गोली दे मारी हो।

मैं चुप थी।

"बेटी, तुम ये गज़-गज लम्बे बाल कटवाना चाहती हो ? ऐसे बाल तो मैंने कभी देखे नहीं।"

मैं अपने इरादे पर अटल थी।

"काले-काले स्याह बाल ! कितने घने हैं ! घने और लम्बे !" अंग्रेज औरत मेरी चोटी से खेल रही थी।

"मैं इन बालों को कटवाकर उस तरह सैट करना चाहती हूं," सामने दीवार पर लगे चित्रों में से एक की ओर इशारा करके मैंने बताया।

"लेकिन ये कैसे हो सकता है ? मैं तो ये गुनाह नहीं करूंगी।" दूकानदार औरत मेरी चोटी को कभी आंखों के साथ लगाती कभी होठों के साथ।

"फिर तो मुझे किसी और के यहां जाना होगा," मेरे अन्दर जैसे एक ज्वाला भड़क रही थी।

"लेकिन बेटी, तुम ये ज़ुल्म क्यों कर रही हो ? ऐसे बाल कटवाना मेरे नज़दीक कत्ल जितना पाप है।"

"मुझे सर-दर्द होता है; और डाक्टर ने मुझे मशविरा दिया है कि मैं अपने बाल कटवा दूं।" मैंने झूठ बोला।

"तो फिर और बात है। माफ़ करना, मुझे इसका ख्याल ही नहीं आया।" अंग्रेज़ औरत एकदम शान्त हो गई। लेकिन उसकी ललचाई हुई नज़रें अभी तक मेरे बालों पर थीं।

"मैं सोचती हूं, अभी आप फ़ारिग़ ही हैं।"

"मेरी फीस १०० रुपया है।" अंग्रेज़ औरत ने मेरी चोटी को खोलकर बालों को मेरे कन्धों पर फैलाते हुए सहज भाव से कहा। मुझे लगता, मेरे बालों का जादू जैसे फिर उसपर होने लगा था।

"क्या मैं दुपहर के खाने तक फ़ारिग़ हो जाऊंगी ?" मैंने पूछा।

अंग्रेज़ औरत कभी मेरे बालों को दूर हटकर देखती, कभी पास आकर देखती, कभी बालिश्तों से मापकर देखती, और कभी दोनों हाथों में लेकर जैसे दीवानी हो रही थी।

"क्या मैं दुपहर के खाने तक फ़ारिग़ हो जाऊंगी ?" मैंने अपना सवाल दुहराया।

"कितने प्यारे बाल ! कितने सुन्दर बाल ! जैसे रेशम के लच्छे हों। इस तरह के बाल मैंने कभी नहीं देखे।" दूकानदार औरत खुद अपने आप से बोले जा रही थी।

"नहीं, नहीं, नहीं।" एकदम जैसे तड़पकर बूढ़ी अंग्रेज़ हेयर-ड्रेसर ने कहा, "बेटी, तुम्हें खाने के बाद आना होगा और शाम के कहीं सात बजे तुम फ़ारिग़ होगी।"

मैं लौटकर घर नहीं आई। सारे का सारा वक्त माल रोड की दूकानों पर फिरती रही। दुपहर के खाने की मुझे ज़रूरत नहीं थी। मुझे तो उस दिन प्यास तक महसूस नहीं हो रही थी।

मैं हैरान थी।

"मैंने सोचा था, तुम अपना इरादा बदल दोगी।" धीमी-सी हंसी हंसते हुए उसने कहा और मुझे पकड़कर केबिन में ले गई।

मुझे कुर्सी पर बिठाकर कितनी देर बुढ़िया मेरे बालों के साथ खेलती रही, जैसे उसका जी न भर रहा हो। सामने आइने में मैं देख रही थी, किस प्यार से, किस लाड़ से वह मेरे बालों के एक-एक लच्छे को हाथों में लेकर चूम रही थी। फिर उसने मेरे बालों को कंघी की। कितनी देर कंघी को बालों के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फेरती रही। फिर सामने मेज़ से उसने कैंची उठाई। कैंची उठाई और उसके हाथ कांप गए। फिर वो मुझसे कुछ कहे बगैर बाहर निकल गई। कुछ देर के बाद जब वह लौटी तो उसके साथ उसका एक असिस्टेंट था और वो उसे समझाने लगी, कितने-कितने बाल उसे काटने होंगे, कहां-कहां से काटने होंगे।

पर मेरी ज़िद थी कि मेरे बाल वो खुद काटे। किसी पराए मर्द को मैं अपने बालों को कैसे हाथ लगाने देती?

"तुम इस तरह के बाल कटवा सकती हो, लेकिन एक पराए मर्द का उन्हें हाथ लगाना तुम्हें मंजूर नहीं!" बूढ़ी अंग्रेज़ औरत हैरान हो रही थी।

७

फिर हमारे घर वो आ गया जिसका इतने दिन से इन्तज़ार था।

मेरा बच्चा यास्मीन की शकल पर था। न मुझपर, न फरहाद पर। मुझे पहली बार एहसास हुआ कि मैं फरहाद से ही केवल निराश नहीं हुई थी, मुझे अपने आप से भी कितनी घृणा थी। यास्मीन की नाक, यास्मीन का माथा, यास्मीन की ठोड़ी। हू-ब-हू यास्मीन पर। उस रोज़ मुझे अपने आप पर बड़ा तरस आया। कभी किसीको अपने आपसे नफ़रत नहीं हुई होगी।

फिर दिल्ली वाले दोनों आए—फरहाद के अब्बा भी, मेरी अम्मी भी। और सारा-सारा दिन वे बच्चे के साथ खेलते रहते। मुझे यूं महसूस हुआ, हमारे बच्चे ने मेरी अम्मी और फरहाद के अब्बा में एक अजीब रिश्ता क़ायम कर दिया था। जितने खुश आजकल उन्हें हम देखते इतने खुश वे कभी भी नहीं सुने थे।

कभी बच्चे के लिए कुछ हो रहा है, कभी बच्चे के लिए कुछ सोचा जा रहा है। कभी कोई उसे गोद में ले लेता, कभी कोई। कभी उसे पालने में डालकर झुलाया जाता, कभी उससे बातें की जातीं, उसे लोरियां गा-गाकर सुनाई जातीं।

मेरी अम्मी और फरहाद के अब्बा हफ्ता दस दिन रहकर लौट गए। चमेली चंगी-भली हो गई थी। और दिन-रात हमारे बच्चे की खातिरें करती वो थकती नहीं थी। आजकल अक्सर मैं घर रहती। कई दिनों से मैं बाहर नहीं निकली थी। यास्मीन आकर सारा दिन मेरे साथ बातें करती रहती। उसकी शादी दो महीने के लिए और रुक गई थी। लड़के को छुट्टी नहीं मिली थी। फिर छुट्टी मिली और रमज़ान आ गया। और यास्मीन अपनी सारी तैयारी करके आजकल इन्तज़ार कर रही थी।

बेकार घर बैठी हम इधर-उधर की बातें करती रहतीं। बातें करतीं और हंसती रहतीं।

यास्मीन कहती—"अब जब मेरे ब्याह होने में कुछ दिन रह गये हैं मेरा जी किसीके साथ भाग जाने को कहता है। सारा-सारा दिन, सारी-सारी रात मैं ख्वाब देखती रहती हूं।"

और हम हंसती रहतीं। उस साल रमज़ान में यास्मीन ने एक रोज़ा भी न रखा। कहती—"इन रोज़ों के कारण ही तो सारी मुसीबत आई है।"

फिर कहती—"हाय कहीं वो इरादा ही न बदल ले। अब तो मुझसे और इन्तज़ार नहीं होगा।"

यास्मीन का जी चाहता अपने दहेज के बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहने। अन्दर पड़े-पड़े खराब हो रहे थे। फ़ैशनों का क्या पता कब बदल जाएं।

कई दिन हुए उस रात के हादसे के बाद यास्मीन केवल दिन में ही हमारे यहां रहती थी। उधर फरहाद के आने का समय होता, इधर ये चल देती। लेकिन जब से हमारे यहां बच्चा हुआ उसकी झिझक जैसे जाती रही हो और वो फरहाद के साथ इस तरह हंसती-खेलती जैसे कभी कुछ हुआ ही न था। 'फरहाद भाई,

फरहाद भाई' करती उसकी ज़बान न थकती। हमेशा उसके साथ कोई न कोई मज़ाक छेड़े रहती।

एक दिन हम बैठी हुई बातें कर रही थीं कि यास्मीन कहने लगी—"हाय, मैंने भी क्या भख मारी! फरहाद भाई मेरी चोटी को ही तो चूमने लगे थे दीवानों की तरह मैंने शोर मचाना शुरू कर दिया। अगर उस रात यह गलती न करती, आज मेरा दिल बहलाने वाला तो कोई होता।" और मैं बिट-बिट उसके मुंह की ओर देख रही थी। यास्मीन हंसने लगी। जो उसके मुंह में आता बोल देती। जो उसके दिल में आता कह देती। कैसी ये लड़की थी!

"हमारे बच्चे की शकल तेरे पर है, क्योंकि जिन दिनों ये आ रहा था, उन दिनों फरहाद के दिमाग़ में तुम बसी हुई थीं," मैं यास्मीन को छेड़ती।

"हाय! अगर मुझे पता होता कोई मुझे इतना प्यार करता है, मैं तो उसके साथ जहां वो कहता चल देती।" यास्मीन मुझे और चिढ़ाती।

यूं हम हंसती-खेलती रहतीं। "मैं तो कहती हूं," यास्मीन कहती, "मैं तो कहती हूं कि एक मेरा मियां पैसे वाला हो, और एक मुझे वो तुम्हारे जैसा बच्चा दे सके, और फिर चाहे वो कुछ करे, जहां चाहे भख मारे, मैं रत्ती-भर भी परवाह नहीं करूंगी।"

और मैं दिल ही दिल में कहती—'बच्चू, तू ठहर तो जा। मरदों की यह ज़ात! मैं देखूंगी शादी के बाद तुम्हारा क्या हाल होता है।"

पर यास्मीन बड़ी चंचल थी। बैठी-बैठी सामने फरहाद के सिग्रेटों के डिब्बे में से सिग्रेट निकालकर पीने लगती। एक-दो कश लगाकर फेंक देती। कई बार जब हम घर अकेली होतीं, आलमारी में से जिन निकालकर दो घूट पी लेती और फिर मस्ती-भरी बातें करती रहती।

मैं उससे हमेशा खफ़ा होती। वो हंसकर टाल देती।

एक इतवार फरहाद घर था। यास्मीन भी आई हुई थी। सारी दोपहर हम बैठे ताश खेलते रहे। शाम को हमने चाय पी। यास्मीन को रात का खाना भी हमारे यहां खाना था। चाय के बाद

बैठे हम गप्पें हांक रहे थे कि फरहाद ने किसी कारण जम्हाई ली।

"फरहाद भाई ! आपको टोटा महसूस हो रहा है ?" यास्मीन फरहाद को छेड़ने लगी।

और फिर यूं ही हंसी-हंसी में अन्दर से बोतल निकाल लाई और फरहाद को जाम पर जाम देने लगी। एक पैग उसने खुद पी लिया। फिर फरहाद के कहने पर एक और पी लिया। फिर लाख मैं उससे लड़ती रही, झगड़ती रही, यास्मीन ने एक और पैग बना लिया और पीने लगी। इस जाम के बाद यास्मीन जैसे बिल्कुल हाथों से निकल गई। हंसती जाती और बातें करती जाती। कभी मेरे गले में आकर बांहें डाल लेती, कभी फरहाद के गले जा लगती। बार-बार अपनी चोटी को उठाकर उसके होठों से लगती।

और फिर रोने लगी।

मैं यास्मीन पर खफ़ा हो-होकर जब थक गई, रुंआसी-सी हुई कमरे में से निकल आई।

बाहर बरामदे में फिर-फिर कर, ढेर-सा समय रसोई में गुज़ार कर जब मैं फिर गोल कमरे में गई, बोतल खाली हो चुकी थी। फरहाद मदहोश सोफ़े पर औंधा पड़ा था और यास्मीन उसकी बांह को थामे उसके हाथ को चूम रही थी।

बड़ी मुश्किल से यास्मीन को पकड़कर मैं अपने कमरे में लाई। जितना मैं उससे प्यार करती, वह उतना ज़्यादा रोती। फिर उसने उल्टियां करनी शुरू कर दीं। सारी दरी, सारा कालीन उसने बरबाद कर दिया। अपने कपड़े खराब कर लिए, मेरे कपड़े खराब कर दिये। मुझसे सम्हाले नहीं सम्हल रही थी। लाख मिन्नतें कर आखिर मैंने उसे पलंग पर डाला। पलंग पर लेटते ही वह सो गई। मैंने अकेले उसके कपड़े बदले, उसका मुह साफ़ किया। उसके अंग-अंग पर पाउडर लगाया।

रात जब ज़्यादा हो गई तो मैंने यास्मीन के घर टेलीफोन करके इजाज़त ले ली कि उस दिन यास्मीन हमारे यहां ही सो जायेगी।

और फिर फरहाद को मैंने किसी न किसी तरह गोल कमरे

में ही लिटा दिया ।

उस रात का खाना जैसा पका था वैसा ही पड़ा रहा ।

मेरा जी चाहता, मैं आंखें बन्द करके कहीं निकल जाऊं ।

लेकिन मेरा लाल पालने में पड़ा टुकुर-टुकुर मेरी ओर ताक रहा था । मैं कहां जा सकती थी ? मैं कैसे अपने बच्चे के अब्बा को छोड़ सकती थी ? कोई मां खुद अपने बच्चे को यतीम कैसे बना सकती है ? और मैं ढेर रात गए तक अपने बच्चे की ओर देखती रही । मेरा बच्चा जो इन दिनों यास्मीन आंटी की शक्ल का था, जिसकी अंग्रेज़ नर्स ने कहा था, "आपका बच्चा आपकी सहेली की शक्ल है । अपनी सहेली को आप शायद सबसे अधिक प्यार करती हैं ।"

यूं सोचती अकेली बैठी उस रात पता नहीं मैं कैसे आंसू रोई हूंगी । मुझे लगता जैसे मेरे लिए सब रातें अंधेरी थीं । चारों ओर कीचड़ ही कीचड़ था ।

और फिर मेरी आंख लग गई ।

सुबह मैं ज़रा देर करके जागी । क्या देखती हूं कि यास्मीन जा चुकी थी । नौकर ने बताया, "बीबी टैक्सी में गई हैं ।"

फरहाद अभी सोया पड़ा था । मुझे एकदम डर-सा महसूस होने लगा । मैंने डाक्टर को टेलीफोन किया । डाक्टर का ख्याल था कि जब तक वो सोया है उसे सोया रहने देना चाहिए ।

अकेली मैं क्या करती ? मुझे दीवारें खाने को दौड़ रही थीं । कोई मेरे जैसा भी बदक़िस्मत होगा ! मैं सोचती और बार-बार मेरी आंखों से आंसू फूट-फूट आते ।

और फिर चमेली ने बच्चा मेरी गोद में ला डाला । बच्चू आया और मैं सब कुछ भूलकर उससे खेलने लगी ।

८

यास्मीन की ये दूसरी घटना एक बहाना बन गई । फरहाद जो कभी भी मेरे नज़दीक नहीं आ सका था और दूर होना शुरू

हो गया। हमारे बच्चा होने के बाद मुझे पराए भी अपने लगने लगे थे, किन्तु एक पर्दा था जो हम दोनों को आपसे अलग किए हुए था। और ये पर्दा अब और गहरा हो गया।

उस दिन के बाद जहां तक मुमकिन होता यास्मीन हमारे यहां न आती। कहीं जो मुलाकात हो जाती तो वो आंखें नीची कर लेती। टेलीफोन पर कभी-कभी बात होती। उसका विवाह नज़दीक आ रहा था। चौथे-पांचवें रोज़ मैं उसके यहां चक्कर लगा आती। उसकी अम्मी के पास बैठी कामकाज पूछती रहती। लेकिन यास्मीन कभी बाहर गई होती, कभी किसी काम में उलझी हुई होती, कभी उससे कोई मिलने आया होता।

यास्मीन का ब्याह हो रहा था और अभी तक मैं फैसला नहीं कर पाई थी कि मैं उसे क्या देने जा रही थी। फरहाद से और सारी बातें होतीं, लेकिन उस रात के बाद पता नहीं क्यों यास्मीन का जिक्र मुझसे कभी न हो पाता।

कई दिनों से गोल कमरे और खाने के कमरे को एक करके मैंने फरहाद के लिए कमरा अलग कर दिया था। मैं और बच्चू अलग कमरे में सोते थे। जब से बच्चा आया, रात को मुझे कई बार उठना होता था और फरहाद जो पहले ही देर करके घर लौटता, इस तरह उसे बड़ी परेशानी होती थी। अलहदा कमरे होने के कारण हम और भी दूर-दूर हो रहे थे। लोगों के सामने हंस लेते, बातें कर लेते, घर लौटकर फिर हमारी मोहब्बत पर ताला पड़ जाता। हमारी ये कोशिश होती कि हम एक-दूसरे के सामने न हों। कितने दिनों से फरहाद सुबह निकलता, रात मेरे सोने के बाद घर लौटता।

एक रात मैं बच्चे का पोतड़ा बदलने के लिए उठी। बच्चे की ये आदत थी, जब वो गीला हो जाता, हाथ-पांव पटककर मुझे उठा देता था। जहां तक संभव था वो रोता नहीं था। मुझे लगा जैसे फरहाद के कमरे में से धुआं निकल रहा हो। मैंने सोचा, आज वो फिर देर से आया था और सिग्रेट पी रहा था। जब एक खास सीमा से ज्यादा देर करके फरहाद रात को घर लौटता

तो मुझे उससे हमेशा डर लगता था। जहां तक मुमकिन हो मैं उसके सामने नहीं होती थी। सोने का बहाना करके आंखें मींच लेटी रहती या कमरे में अपने आपको बन्द कर लेती। लेकिन धुंआ तो ज्यादा हो रहा था और एकदम मेरी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई। आंख झपकने में मैं अपने पलंग से कूद, परदा हटाकर, फरहाद के कमरे में गई। सारा कमरा धुंआ-धुंआ था। बत्ती जलाकर मैंने देखा, फरहाद का तकिया सुलग रहा था। चीखकर मैंने फरहाद को अपनी बांहों में ले लिया।

बात यूं हुई, सिग्रेट पीता-पीता वो सो गया था और जल रहे सिग्रेट ने उसके बिस्तर को आग लगा दी थी।

ये ख्याल करके कि अगर बच्चा न जागता तो क्या हो सकता था, मैं सर से लेकर पांव तक कांप-कांप जाती। और बच्चे ने उठाया भी कैसे था! फरहाद कितनी देर बच्चे को छाती से लगाए उसे चूमता रहा। बेटे का अपने बाप पर ये पहला अहसान था।

मुझे फरहाद के सिग्रेटों से जितनी घृणा उस रात हो रही थी उतनी पहले कभी नहीं हुई थी। और फरहाद सामने कुर्सी पर बैठा आग के हादसे से चौंका हुआ सिग्रेट पिये जा रहा था। वो सारा प्यार जो मेरे अन्दर उसको सुलग रहे बिस्तर से निकालते हुए उमड़ा था, हौले-हौले उड़-सा गया। और फिर मुझे अपने बच्चे के पिता की आंखें लाल-लाल-सी लगने लगीं। उसके होंठ सूजे-सूजे महसूस होने लगे। उसके गाल पीले-पीले, उसका माथा बेरौनक। अकेले दिन रात के दस बजे, ग्यारह बज गए, बारह बज गए और फरहाद की कोई खबर नहीं थी। बच्चे की तबियत ठीक नहीं थी और मैं परेशान थी। मुझे नींद नहीं आ रही थी। चमेली बच्चे को गोद में लिए कभी एक कमरे मे जाती, कभी दूसरे कमरे में जाती। बार-बार आकर मुझसे कहती—"बीबी, साहब नहीं आए।" और बार-बार जैसे मुझे मेरी जिन्दगी की रिक्तता की याद दिला रही हो। और फिर चमेली शायद समझ गई, उसके यूं बार-बार कहने से मुझे दुःख होता है और वो चुप हो गई। मेरा दिल अत्यन्त परेशान हो रहा था।

और फिर बाहर बरामदे में टेलीफोन की घंटी बजने लगी। इस समय टेलीफोन की आवाज सुनकर मेरे हाथ-पांव फूल गये। मुझमें शक्ति नहीं थी कि उठकर टेलीफोन सुन सकूं। कितनी देर जब घंटी बजती रही, चमेली मेरी परेशानी को पहचानकर बाहर टेलीफोन सुनने गई।

वही बात थी।

फरहाद शराब में बदमस्त मोटर चला रहा था कि उसकी मोटर एक बिजली के खम्भे से जा लगी। मोटर टूटी-फूटी नाली में पड़ी थी और लोग फरहाद को अस्पताल ले गए थे।

वैसी की वैसी मैं बाहर निकल गई। सामने सड़क से टैक्सी लेकर पांच मिनट में अस्पताल पहुंची। फरहाद सामने बेहोश पड़ा था। माथे पर, कानों पर, बांहों पर, टांगों पर पट्टियां बंधी थीं। उसके मुंह से शराब की बू आ रही थी।

फरहाद को मैंने यूं देखा तो मुझे चक्कर-सा आ गया। सामने पड़ी एक कुर्सी पर मैं ढेर हो गई। जब मुझे होश आया, डाक्टर ने बताया कि चिन्ता की कोई बात नहीं थी। चोट कोई भी ऐसी नहीं थी जिसका खास खतरा हो। मामूली खरोंच थी या छोटे-छोटे जख्म थे। किसी हड्डी को जर्ब नहीं आई जान पड़ती थी। और अभी हम बातें कर रहे थे कि फरहाद ने आंखें खोलीं।

मैं चाहती थी कि टूटकर उसके गले लग जाऊं और रो-रोकर उसके शरीर के सारे घाव धो डालूं। किन्तु एक सामने डाक्टर खड़ा था और दूसरे फरहाद के मुंह में से अभी तक दारू की बू आ रही थी। मैं बस उसके पास खड़ी हो गई। डाक्टर फिर अपने काम में संलग्न हो गया था। उसकी नब्ज देख रहा था, उसे कह रहा था कि उसके पलंग के पास मैं खड़ी थी। मैं बड़े हौसले में थी। तनिक भी घबरा नहीं रही थी। और कितना कुछ और।

एक के बाद एक हादसा ! मैं सोचती, अल्ला की क्या मर्जी थी। अस्पताल में घायल लेटे हुए फरहाद के गले लगकर मैंने एक अश्रु भी नहीं बहाया था। मैं सोचती, कहीं वो वक्त तो नहीं आ गया था कि हम एक-दूसरे की दुनिया में से निकल रहे थे।

ग्रौर मेरा ग्रंग-ग्रंग कांपने लगता।

घंटों गुमसुम मैं ग्रकेली बैठी रहती। ग्रकेली बैठी ग्रपने पास खेल रहे पालने में पड़े ग्रपने बच्चे को देखती रहती। मुझे जाड़े की धूप फीक-फीकी लगती। फूलों के रंग बुझे-बुझे लगते। किसीको हंसते देख-कर मेरा दिल परेशान होने लगता। मैं सोचती, इतना सोचती रहती ग्रौर फिर मेरा सर दर्द करने लगता ग्रौर मैं ग्रौर न सोच पाती।

फरहाद ग्रस्पताल में ही था कि यास्मीन का व्याह ग्रा गया। मुझे पता था मैं उसे क्या देने जा रही थी। इसलिए न मैंने फर-हाद से इसका ज़िकर किया ना ही मैंने खुद इसकी चिन्ता की। शादी वाले रोज़ मैंने ग्रपने गहने निकाले ग्रौर ग्रपनी ग्रम्मी का दिया झुमकों का जोड़ा लेकर यास्मीन की झोली में जा डाला। यास्मीन की मां झुमकों की डिबिया खोलकर हैरान मेरे मुंह की ग्रोर देखने लगी। ग्रौर फिर उसने मुझे ग्रपनी छाती से लगा लिया। छाती से लगाकर कितनी देर वो फफक-फफककर रोती रही।

पता नहीं वो ग्रश्रु किसके थे। प्यार के, सुकराने के या किसी पुरानी याद के!

जिस दिन यास्मीन लाहौर से चली उस दिन हमारे यहां ग्राई। वार-वार मेरे गले लग रोती रही, मुझे रुलाती चली गई।

यास्मीन के जाने के कोई एक हफ्ता बाद फरहाद घर लौटा। डाक्टर का ख्याल गलत था। फरहाद की एक से ग्रधिक हड्डियां टूटी थीं ग्रौर उन्हें ठीक होने में कई हफ्ते लग गये। फरहाद लौट ग्राया लेकिन हमारी मोटर नहीं ग्राई। टक्कर बहुत बुरी लगी थी। सारे का सारा इंजन वरबाद हो गया था। फरहाद ने मोटर के वीमे की रकम वक्त पर नहीं दी थी इसलिए कम्पनी ने दुर्घटना की ज़िम्मेदारी लेने से इन्कार कर दिया था। ग्रौर मिस्त्री की राय थी कि जितने पैसे इस मोटर की मरम्मत कराने में लगेंगे उतने में एक ग्रौर मोटर ग्रा सकती थी।

मोटर की मरम्मत महगी थी। इससे तो ग्रादमी नयी मोटर खरीद ले। ये जिन्दगी मुझे पग-पग पर क्या इशारे कर रही थी?

९

किसी कारण मैंने फरहाद को टेलीफोन किया । उसका टेलीफोन रुका हुआ था । कुछ देर के बाद मैंने फिर टेलीफोन घुमाया, उसका टेलीफोन अभी भी रुका हुआ था । कोई पांच मिनट बाद मैंने फिर टेलीफोन मिलाया और इस बार पता नहीं कैसे मेरा टेलीफोन फरहाद के टेलीफोन से मिल गया । वो किसीसे बातें कर रहा था ।

"सच ?" ये आवाज़ किसी लड़की की थी—चंचल, शोख और शायद बेशर्म !

"हां, मैं झूठ नहीं बोल रहा," फरहाद ने जवाब दिया ।

और मेरे कान जैसे टेलीफोन के चोंगे के साथ जुड़ गए । जैसे कोई किसीको अपने घर में सेंध लगाते देख ले और किसीके मुंह में से एक बोल न निकले ।

"मैं नहीं मान सकती," लड़की की आवाज़ में शरारत टपक रही थी ।

"मैं सच कहता हूं मुझे अभी तक पता नहीं मुहब्बत क्या है ।" जैसे कोई साफ़ झूठ बोल रहा हो । जैसे कोई अपनी ग़रीबी का वास्ता देकर किसीसे भीख मांग रहा हो । कितनी देर फरहाद बोलता रहा और मैं सुनती रही । यूं वो बातें कर रहे थे कि मेरे हाथ से टेलीफोन छूट गया । टेलीफोन का चोंगा गिरते ही दो टुकड़े हो गया ।

एक-एक बोल फरहाद का जैसे मेरे दिल पर नक्श हो गया था ।

और मैं सोचती, मैं इसे कितना मासूम समझती थी ! मैं इसे कितना भोला समझती थी ! जैसे इसके मुंह में ज़बान न हो । कितना मज़लूम ये लगता था तब जब मेरी अम्मी इसे यतीम बनाने पर तुली हुई थी !

और बार-बार मेरा लहू खौलने लगता । बार-बार मेरी हथेलियों पर पसीना छूटता, बार-बार मेरे होंठ मेरे दांतों के नीचे चबाए-से जाते और मैं दुआएं मांगती—"या अल्ला, आज की रात खैरियत से गुज़र जाए !"

लेकिन वो रात कहां खैरियत से गुज़र सकती थी !

ढेर रात हो गई तो भी मुझे नींद नहीं आ रही थी। नौकर जा चुके थे। बच्चा सो चुका था। मैं बार-बार लेटती, बार-बार मेरा दिल घबराने लगता और मैं कमरे में टहलना शुरू कर देती। कमरे में टहलती थक जाती तो बरामदे में टहलने लगती।

घड़ी ने ग्यारह बजाए तो भी मैं जाग रही थी। घड़ी ने बारह बजाए तो भी मैं जाग रही थी। मैं नहीं चाहती थी कि जब फरहाद आए तो मैं जागती हूं। कम से कम आज के दिन मैं फरहाद की शक्ल नहीं देखना चाहती थी। लेकिन नींद थी कि आ ही नहीं रही थी। मैं इसी उलझन में थी कि फरहाद आ गया। जब से उसकी मोटर छिनी थी उसके आने का कुछ पता नहीं लगता था। चुपके से आ निकलता।

"ये बाहर टेलीफोन किसने तोड़ा है ?" फरहाद के मुंह से दारू की बू आ रही थी।

मैं चुप रही। उस दिन मैं उसे मुंह नहीं लगाना चाहती थी।

"मैंने पूछा, ये टेलीफोन किसने तोड़ा है ?" फरहाद ने ऊंचे स्वर में बोलते हुए कहा।

मैं फिर भी चुप रही। उस रात मैं अल्ला के क़हर से डर रही थी।

"किसने तोड़ा है ये टेलीफोन ?" फरहाद ने नशे में बदतमीज़ी से आगे बढ़ते हुए कहा। इस तरह फरहाद कभी मेरे साथ नहीं बोला था।

मुझे एकदम क्रोध आ गया। मैं अपने पलंग से उठी, गुस्से में कांपती हुई मैंने शराब में बदमस्त फरहाद को कालर से पकड़कर उसे उसके कमरे में पलंग पर जा पटका, और एक शेरनी की तरह फुंकारती हुई अपने कमरे में लौट आई। गिरते समय फरहाद का सर पलंग की पट्टी पर जा लगा।

अपने कमरे में आकर मैं फिर बैठ गई। पर मुझे आराम कहां ? मैं फुंकारती-दहाड़ती फिर फरहाद के कमरे में गई और उसे टेलीफोन पर सुनी एक-एक बात बक दी।

फरहाद का सारा नशा हिरन हो गया। हैरान-परेशान वह बिट-बिट मेरी ओर देखने लगा। उसका मुंह पीला जर्द हो गया जैसे कोई चोर चोरी करता मौके पर पकड़ा जाए।

"मैं पूछती हूं, जब कोई बीवी अपने शौहर को किसी पराई औरत के साथ इस तरह बात करता अपने कानों सुने, तो टेलीफोन हाथों से गिरता है कि नहीं ?"

फरहाद चुप था।

"मैं पूछती हूं, जब किसी औरत के सुहाग की इस तरह मिट्टी पलीद की जाय, तो टेलीफोन उसके हाथों से गिरता है कि नहीं ?"

फरहाद चुप था।

"मैं पूछती हूं, जब किसीकी आंखों के सामने उसके मांस को नोच-नोचकर खाया जाए, तो टेलीफोन उसके हाथों से गिरता है कि नहीं ?"

फरहाद वैसे का वैसा चुप था।

"तुम और यूं मस्कीन बनकर मुझपर जुल्म नहीं कर सकते। आज मैंने फैसला कर लिया है कि इस घर में और एक दिन भी नहीं रहूंगी।"

अभी ये बोल मेरे मुंह में ही थे कि हमारा बच्चा खिसकता हुआ हमारे दोनों के दरम्यान आकर बैठ गया, और बिट-बिट कभी मेरी ओर देखने लगा और कभी अपने अब्बा की ओर देखने लगा।

दौड़कर मैंने अपने लाल को अपनी छाती से लगा लिया। वह यूं देख रहा था जैसे कह रहा हो, आखिर मेरा क्या कसूर है ? मुझे इस तरह यतीम क्यों बनाया जा रहा है ? और मैं अपने बच्चे को उठाये फूट-फूटकर रोती अपने कमरे में लौट आई।

उस दिन के बाद मैं हैरान होती। कई बार फरहाद हैरान होता, किस तरह बच्चा उस रात सोए-सोए जाग गया, किस तरह आप ही आप पलंग से नीचे उतर आया और किस तरह हमारे दोनों के दरम्यान आकर बैठ गया जैसे हमें अपने फर्ज की याद दिला रहा हो।

१०

रात चांदनी थी। उधर से दिन डूबा, इधर चांद की चांदनी ने अपना जादू बिखेरना शुरू कर दिया। पूनम का चांद कितना बेक-रार होता है। दूधिया-सी चांदनी, सफेद-सफेद चांदनी की पर-छाइयां, जैसे देखते-देखते कोई चमेली खिल पड़े। मकई के आटे से जैसे पिटारी भरी हो। खिलखिलाकर हंसती हुई गोरी की परछाई मोतियों जैसे साफ पानी में तैर रही हो।

कब से मैं अपने बरामदे में अकेली बैठी हुई थी।

सामने गुलमोहर के पेड़ के नीचे छन-छनकर पड़ रही चांदनी में हौले-हौले कदम एक मोतिए रंग की बिल्ली कुछ ढूंढ़ रही थी, जैसे उसकी कोई चीज़ खो गई हो। टेलीफोन के तार से उलझी पतंग अभी तक हारी नहीं थी, शाम से इस कशमकश में भी किसी तरह वो आज़ाद हो जाए। आज़ाद होकर फिर खुले आकाश में उड़ सके। लान की सामनी ओर नलका खुला था, नलके के आस-पास रुके हुए पानी पर चांदनी जैसे थर-थर कांप रही थी।

मैं अपने बरामदे में बैठी अकेली सोच रही थी—कोई समय था। यूं बैठी मैं अपनी चोटी के साथ खेलती रहती थी। कभी बालों के कुछ बन्द खोल दिए, कभी फिर उन्हें गुंथना शुरू कर दिया। यूं बालों को खोलती, गूंथती, मैं कहीं की कहीं पहुंच जाती थी। अब जब से मैंने अपनी चोटी गंवाई थी, उस तरह की उड़ान भी जैसे मेरी खो गई हो।

चांद की चांदनी कदम-कदम फैल रही थी। ज्यों-ज्यों रात ज्यादा हो रही थी, चांदनी त्यों-त्यों शोख होती जा रही थी। सामने पगडंडी पर पड़ी टूटी हुई लाल चूड़ी पर से चांदनी की रश्मियां फिसल-फिसल कर मेरी ओर आ रही थीं, कभी मेरे गालों पर आ पड़ती थीं, कभी मेरे होंठों पर आ पड़ती थीं, कभी मेरे कानों के झुमकों के साथ सरगोशियां करने लगती थीं।

अन्दर आया बच्चे को बहला रही थी। 'घूंघट में गोरी जेले' अक्सर आया ये गीत गाती थी। आज भी यही गीत गा रही थी।

गोरी क्यों जलती है घूंघट में ? क्यों कोई अपने दिल के महल के सारे पर्दे गिराकर अपनी छाती में रोग पाल लेता है ? क्यों कोई लोग बरबाद होना मंजूर कर लेते हैं, किन्तु ये नहीं गवारा करते कि उनको बरबाद होता कोई और देखे ? दिल का तखत जल जाए लेकिन इसकी चिनगारी पड़ोसी न देख पाए ।

चांदनी चारों ओर खिली हुई थी । एक सुर, एक ताल आगे-पीछे बरस रही थी । फैलते-फैलते, बढ़ते-बढ़ते सारे अंधेरे को इसने अपनी लपेट में ले लिया था । दीवारें और छतें नूरोनूर हो गयी थीं । गुलमोहर की फूल-पत्तियों पर पड़ रही चांदनी यूं लगती जैसे गोरी के लबों पर फूट-फूट आई हंसी को चित्रित कर रही हो । चांदनी कहीं उलांचें भरती, कहीं हंसों की चाल चल रही, कहीं यूं चलती जैसे सोई-सोई सागर की कोई लहर हो ।

इस तरह की खिली हुई चांदनी में सामने सड़क से लगातार आ रही मोटरों, ट्रकों, तांगों, सायकिलों की आवाज़ यूं लगती जैसे धुले हुए आकाश में कौवों के झुण्ड गुज़र रहे हों । तेज़ निकल रहीं लारियों की आवाज़, हौले चल रहीं मोटरों की आवाज़, तांगों की आवाज़, तेज़-तेज़ दौड़ते घोड़ों के गले में घुंघरू और सायकिल वालों की परेशान घंटियों की झनकार और चांदनी इस सब कुछ में निर्लिप्त बेलौस मुहब्बत लुटा रही, दूध जैसे सफेद खिले फूलों की वर्षा कर रही थी ।

चांदनी सोए-सोए सरुओं को झकझोर रही थी । गुलमोहर की परछाइयों को बाहुपाश में ले रही थी । चांदनी सामने रोशन-दान के शीशों से इस तरह आकर उलझती, मुझे लगता शीशे चटक जायेंगे । फलों का बोझ भी तो बोझ होता है । चांदनी मुंडेरों से फिसल-फिसलाकर दीवारों से लाड़ कर रही थी । धरती पर फैल-फैलकर कंकड़ियों को पुचकार रही थी । चांदनी पत्तियों-टहनियों के कानों में कुछ कह रही थी । दाएं-दाएं फ्लैटों में नौकरों को आवाजें देना बन्द हो गया था । बच्चों को डांटना, फटकारना खतम हो गया था, झर-झर नलकों का चलना रुक गया था । टप-टप सीढ़ियां चढ़ना, पट-पट सीढ़ियां उतरना, खट-खट दरवाज़ों का

खुलना, ठक-ठक दरवाज़ों का बन्द होना, मोटरों का ग्राना, रुकना घूमकर फिर चले जाना, धीरे-धीरे सब समाप्त हो गया था। रेडियो पर पक्के गाने शुरू हो गये थे, फिर रेडियो मद्धम पड़ गए, फिर उनके गले घोंट दिए गए।

चांदनी का जैसे राज हो, चारों ग्रोर नाच रही थी। पत्तों मेंसे छन-छनकर टहनियों को फलांग-फलांगकर, तिनकों पर, घास पर, मिट्टी पर चप्पा-चप्पा जम चुकी थी। चांदनी कहीं शगूफों को हंसा रही थी, कहीं कलियों को खिला रही थी, कहीं नई निखरती कोंपलों के साथ भूल रही थी। कहीं उछल रही थी, कहीं कूद रही थी, कहीं थककर ढेर हुई पड़ी थी।

चारों ग्रोर फ्लैटों में बत्तियां बन्द हो गईं। सामने सड़क पर बिजली के खम्भों से लगे बल्ब बुझ गए। घर ग्राने वाले सारे घर लौट चुके थे।

ग्रौर मुझे यूं लगा जैसे मेरा ग्रंग-ग्रंग नुच रहा हो। जैसे मेरी जवानी, मेरा यौवन मेरे हाथ से छूट रहा हो। ग्रौर मैं सहसा उठकर बरामदे से बाहर निकल ग्राई। एकदम जैसे मेरे ग्रन्दर कोई ग्राग-सी भड़क उठी हो ग्रौर मैं चांदनी की रिमझिम-रिमझिम हो रही वर्षा में ग्रपने ग्रापको शान्त कर रही थी।

सब दुनिया सो चुकी थी ग्रौर मैं ग्रपने बरामदे के बाहर बेकरार टहल रही थी।

ये मुझे क्या हो रहा था ?

तेज़-तेज़ कदम, हौले-हौले कदम, मेरा दुपट्टा कब का खिसकता-खिसकता धरती पर पड़ रहा था। कब से दुपट्टा मेरे पीछे-पीछे घिसट रहा था, मुझे नहीं पता था। ग्रगर पता होता तो मैं दुपट्टे को सम्हाल न लेती। ये मेरे बाल किस तरह उड़ रहे थे। हवा तो कोई इतनी तेज़ नहीं थी, शायद हवा तेज़ थी। कभी उड़कर कोई लट मेरे मुंह पर ग्रान पड़ती। कभी कोई मेरे माथे को ढक लेती। मेरी गर्दन पर पसीने के मोती जम रहे थे। बार-बार मैं ग्रांचल से उन्हें पोंछती। बार-बार वो चूने लगते जैसे कोई गागर लबालब भर गयी हो।

सहसा मुझे लगा, जैसे रात के अकेलेपन में चांद नीचे उतर आया हो। सामने लान के गिर्द सब फूल खिले हुए थे। सारे पेड़ चैतन्य खड़े हुए थे। फूलों पर चांदनी, पत्तों पर चांदनी, चांदनी मिट्टी के मैलेपन पर, चांदनी रेत के दानों के उजलेपन पर, चांदनी बार चबाई नुक्कड़ में पड़ी कुतिया की हड्डी पर। चांदनी कोमल सौ शगूफों की ताज़गी पर जिन्होंने अभी तक दिन का मुंह तक नहीं देखा था। चांदनी यूं फैल रही, यूं बिखर रही जैसे हुस्न दीवाना होकर, अपने आपको लुटा रहा हो। चांदनी फूल की पत्तियों में खिलखिलाकर हंस रही, चांदनी अनखिली कलियों में मदहोश पड़ी हुई। चांदनी मेंहदी में ज़ुमुर्दी पत्तों में चुपचाप शरमाई-शरमाई। चांदनी लेटी हुई घास की लान पर। चांदनी ऊंचे लम्बे सरुओं के साथ कद मिल रही। चांदनी आंखें मटका रही, इशारे कर रही, गले लगा रही। चांदनी चांदनी के पेड़ में आकर सुगन्ध बन गई। चांदनी इश्कपेचे की घनी वेल में सोई-सोई।

मुझे पता भी नहीं लगा और मैं टहलती हुई सामने गेट पर जा खड़ी हुई, जैसे किसीको किसीका इन्तज़ार हो।

और मैं पसीना-पसीना हो गई। उधर सड़क से कोई सायकिल पर आ रहा था। साइकिल वाला एक ओर से आया, दूसरी ओर अपनी राह गुज़र गया। पर जिधर से वो आया मेरी नज़र उधर से घूमती-घूमती दूर तक उसकी पीठ पर टिकी रही और फिर वो सायकिल एक निशान होकर रह गई, खो गई। ये कौन था?

११

पूनम की चांदनी वाली उस रात का नशा अभी मेरे अंग-अंग में रचा हुआ था कि एक शाम मेरे पांव तले से ज़मीन निकल गई। फरहाद दफ्तर से जब लौटा, उसके साथ वही साइकिल वाला सरदार लड़का था, जिसे उस रात सड़क पर जाते देखती मेरी नज़र उसके पीछे-पीछे घूमती चली गई थी और मुझे अपना आप खाली-खाली लगने लगा था।

ये तो वही था, बड़ी-बड़ी काली आंखें, गन्दमी रंग, गुलाबी-गुलाबी गाल। दांत मोतियों के दाने। हल्की-हल्की संवारी हुई दाढ़ी। ऊंचा-लम्बा, अच्छा-अच्छा शान्त गम्भीर।

फरहाद ने हमारी मुलाकात करवाई। मुझे तो कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। मुझे तो कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। मुझे तो सिर्फ ये याद था कि सूरजमुखी के फूल की तरह मेरी गर्दन उस रात मुड़ते-मुड़ते बिल्कुल घूम गई थी, साइकिल पर जा रहे इस अजबनी को घूरते। यूं तो मैंने कभी नहीं किया था। एक फरहाद और उसके बाद किसी भी ओर एक से दूसरी नज़र उठाकर मैंने नहीं देखा था। ये कौन था जिसकी ओर मैं यूं देखती ही रही थी। ये कौन था जिसकी ओर मैं यूं देखती गई थी और मुझे अपना आप बुरा-बुरा नहीं लगा था, उससे मुझे नफ़रत नहीं हुई थी। आदमी उस पत्थर को कभी नहीं माफ करता जिसपर से किसी-का पांव फिसल जाए चाहे वह पत्थर संगमरमर ही क्यों न हो।

कमलजीत नया-नया फरहाद के दफ्तर में नौकर हुआ था। आजकल फरहाद से काम सीख रहा था। शाम को जब फरहाद घर लौटता, हर रोज़, हर दूसरे रोज़ कमलजीत से बातें करता उसे अपने साथ ले आता।

गप्पें मारते वे चाय पीते, गप्पें मारते वे बाहर सैर के लिए निकल जाते। मुझे फरहाद का कमलजीत के साथ बाहर जाना कभी बुरा नहीं लगता था। कमलजीत के साथ बाहर गया वो चाहे कितनी देर में लौटे, मुझे कभी चिन्ता नहीं हुई थी।

कमलजीत हमारे यहां आता और सारा वक्त हमारे बच्चे के साथ खेलता रहता। चार दिन और बच्चा उसका दीवाना हो गया। कमल चाचा को देखकर जैसे वो खिल-सा जाता। या बच्चे से खेलता रहता या सामने लगे फूलों के बारे में बातें करता रहता। अजीब आदमी था। बच्चे से इतना प्यार! फूलों से इतनी मुहब्बत!

फिर वह हमारे यहां ही आ गया।

बात यूं हुई। दूसरी बड़ी जंग हर दिन ज़ोर पकड़ रही थी।

एक शाम फरहाद और मैं कमलजीत के यहां चाय पर गए। हमारे बैठे ही उसे नोटिस मिला कि चौबीस घण्टे के अन्दर-अन्दर वो अपना घर खाली कर दे। उस बिल्डिग में कोई सरकारी दफ्तर खुलने जा रहा था। उन दिनों और कोई घर मिलना बिल्कुल असम्भव था। और इसके सिवाय कि कमलजीत किसी होटल में जा टिके कोई और चारा नज़र नहीं आ रहा था। कमलजीत ने नोटिस देखा और उसके हाथ-पांव फूल गये। चौबीस घंटों में तो किसी अच्छे होटल में जगह मिलनी मुश्किल थी। यूं उसे परेशान देखकर मेरे मुंह से निकला—"आप हमारे यहां आ जाइये। जब तक आपको कोई और घर नहीं मिलता आप हमारे यहां रह लें।" और फरहाद जैसे उसके पीछे ही पड़ गया। उसी वक्त पैकिंग शुरू हो गई। उस शाम जब हम घर लौटे, हम टैक्सी में कमलजीत की किताबें और छोटा-मोटा बाकी सामान अपने साथ ले आए।

अगले दिन कमलजीत ने हमारे यहां जाना था। मुझे अपना घर भरा-भरा-सा लगता। क्यों? क्यों?? और मैं सर से लेकर पांव तक कांप जाती।

ढेर रात गए तक मैं कमलजीत के लिए कमरा सजाती रही। फ्लैट के एक ओर फालतू कमरा था। हमने इसे मेहमानों के लिए रख छोड़ा था और अब इतने दिनों बाद उस कमरे के लिए मेहमान मिला था।

मैं खुश थी। फरहाद मुझसे भी ज़्यादा खुश था। परदे बदलने में, उस कमरे से फालतू सामान निकालने में, मेरी मदद कर रहा था। कभी कहता, कमलजीत का पलंग खिड़की के पास होना चाहिए, कभी कहता, खिड़की के पास पलंग नहीं होना चाहिए। कमलजीत जैसा लापरवाह लड़का खिड़की खोलकर सो जाएगा और रात को ठंड हो जाती थी। जैसे बड़ा भाई छोटे भाई की फिकर करता है, हमेशा फरहाद कुछ इस तरह कमलजीत के बारे में सोचता था।

और मेरे अन्दर कमलजीत के लिए कैसी भावना थी? ढेर रात गए तक उस दिन मैं अपने मन को टटोलती रही।

मुझे कमलजीत में सबसे प्यारी चीज़ उसके चेहरे पर अंकित निश्छलता लगती थी। इतना भोला था कमलजीत। कोई नौजवान इतना भोला हो सकता है मैं सोच भी नहीं सकती थी। और किस प्यार से वो मुझे बुलाता था! "भाभी जान," वो कहता और उसकी सारी मुहब्बत, सारा सत्कार उसकी पलकों में उमड़ आता।

क्योंकि कमलजीत नौजवान था, उसके चेहरे पर मेरे हुस्न की पहचान झलक रही होती। क्योंकि कमलजीत मेरे शौहर के साथ काम करता था। इस पहचान में एक अकह आदर रचा हुआ होता। और फिर उसके स्वभाव की सादगी। सारी ही वो बातें कमलजीत में थीं जिनकी मुझे कितने दिनों से तलाश थी। और मुझे कमलजीत अत्यन्त अच्छा लगने लगा। मैं उसके साथ औरत के तौर पर, पत्नी के तौर पर, इन्सान के तौर पर अपने आपको अत्यन्त महफ़ूज़ महसूस करती थी।

मैं तो मैं, फरहाद खुद कमलजीत का दीवाना था। पिछले कुछ दिनों से फरहाद की ज़िन्दगी में एक अजीब खला पैदा हो रहा था। कमलजीत ने उसे आकर भर दिया। उसे किसीकी ज़रूरत थी जो फरहाद को अनबटा सत्कार दे, उसके स्वभाव की सब कमज़ोरियों से अनजान होकर। और ऐसा व्यक्ति एक कमलजीत था। इतना शरीफ, इतना भलामानस कि उसे किसी में कोई ऐब नज़र ही नहीं आता था।

या फिर शायद ये बात थी कि हमारी खानगी ज़िन्दगी एक अजीब मोड़ पर पहुंच चुकी थी। अकेले घर होते तो हम चुप-चुप बैठे रहते—फरहाद पढ़ता रहता, मैं बच्चू के साथ लगी रहती या फिर हम झगड़ने लगते। अन्दर का दर्द मैं उस तक ज़ाहिर न होने देती और कोई न कोई बहाना बनाकर बहस करने लग जाती। गुसलखाने में नहाने के लिए रखा गरम पानी पड़ा-पड़ा ठंडा हो जाता। मेज़ पर लगा खाना बार-बार उठाया जाता, बार-बार रखा जाता। हमें ज़रूरत थी कमलजीत जैसे किसी साथी की जो हमारे जीवन के इस सूनेपन को आकर भर दे। इस बात का अहसास कि कोई तीसरा आदमी इस घर में है, हम दोनों पति-

पत्नी की मुहब्बत के नाटक करते रहते और ये नाटक जिन्दगी को सुहाना बनाए रखते। कितनी ज़रूरत थी उन दिनों हमें ये खेल खेलने की !

१२

कमलजीत हमारे घर आ गया।

सामने टैक्सी में से उतर रहे मैंने उसे देखा और मेरे दिल ने कहा—'मैं इसे कभी नहीं जाने दूंगी।'

उस रात खाने की मेज़ पर से जब कमलजीत उठकर गया तो फरहाद ने मेरी ओर देखते हुए कहा—"इसे अब हम नहीं जाने देंगे।" मैंने कोई जवाब नहीं दिया केवल आंखें नीची कर लीं। खाना खाकर मेज़ पर ही बैठे गप्पें हांकते कितनी रात हो गई थी और मैं थकी-थकी लग रही थी।

सोने से पहले बार-बार मेरे कानों में फरहाद के ये बोल गूंजते—'इसे अब हम नहीं जाने देंगे।' और मैं स्वाद-स्वाद हुई सो गई।

और फिर हमने कमलजीत को अपने यहां से जाने नहीं दिया हफ्ता दो हफ्ते, महीना दो महीने, साल हम कमलजीत को अब जाने का नाम न लेने देते थे। शुरू-शुरू में कई बार वो बाहर अपना इन्तज़ाम भी कर आया। लेकिन हम उसके जाने से राज़ी नहीं थे। और कमलजीत हमें नाराज़ करके कैसे जा सकता था !

कमलजीत हमारे घर का ही एक आदमी हो गया। पता नहीं क्या रिश्ता था। हमारे बच्चे का चाचा ? फरहाद का दोस्त ? मेरा देवर—मुझे भाभीजान कहकर बुलाने वाला ? फरहाद का छोटा भाई ? मेरा हमदर्द ? मुझे लगता जैसे हम अजल से एक-दूसरे को पहचानते हों।

कमलजीत यूं हमारी ज़िन्दगी में आनकर घुल-मिल गया कि हमें कभी इस बात का अहसास भी नहीं हुआ कि कोई तीसरा आदमी हमारे साथ आकर रहने लग गया था। एक सूझ, एक

सत्कार, एक हुस्न हमारे रिश्ते के आधार थे। कमलजीत ने कभी हमारे सामने ऐसी बात नहीं की जो उसे ना करनी हो। कमलजीत एक क्षण भी कभी उससे अधिक हमारे पास न बैठता जितनी देर उसका हमारे पास बैठना मुनासिब हो। कमलजीत ने कभी एक नज़र उठाकर उस ओर नहीं देखा जिस ओर देखना उसका वाजिब न हो। ज़िन्दगी के कई पड़ाव गुज़र गए। कमलजीत खुद कभी शर्मिन्दा नहीं हुआ। उसने हमें कभी शर्मिन्दा नहीं होने दिया।

मैं हैरान थी। कमलजीत की दोस्ती, कमलजीत की मुहब्बत, कमलजीत का साथ मुझे और फरहाद को जैसे नित्य नज़दीक ला रहा हो। घर में हर समय गहमागहमी मची रहती, मासूम खेलें, मासूम चाहतें। एक-दूसरे को खुश करने की सोचते रहना, एक-दूसरे को खुश देखकर खुश होते रहना।

कमलजीत में कोई ऐब नहीं था। जवान जहान लड़कों वाली कोई बात नहीं थी। उसके चेहरे पर शराफ़त, ईसार, बेलौस मुहब्बत, इस तरह के गुण अंकित थे। कई बार फरहाद खीझकर कहता—"कमलजीत से मामूली-सा भी झूठ नहीं बोला जाता।" कोई गलत बात फरहाद को उससे कहलवानी होती तो लाख उसकी रिहर्सल करवाता, फिर भी कमलजीत वक्त पर ठिठक जाता और फरहाद की सारी पोल खुलकर रह जाती।

मुझे कमलजीत में सबसे प्यारा गुण उसका अपने मज़हब में एतकाद प्रतीत होता था। सुबह नित्य नियम से वो अपना 'पाठ' करता। सुबह जब मेरी आंख खुलती, पाठ कर रहे उसकी मधुर आवाज़ मीठे शहद की तरह मेरे कानों में गूंजती रहती। सांझ को चाहे कहीं हो, बाग में सैर कर रहा, क्लब में गप्प कर रहा, बाज़ार में मेरे साथ शापिंग कर रहा, अपने समय पर वो अलहदा हो जाता और उसके होंठ हिलने लगते। क्लब के बाहर लान में टहल रहा, अपने समय पर वो पाठ कर रहा होता। घर दोस्तों की महफिल जमी होती, वो धीरे से उनमें से खिसक जाता और अपना नेम पूरा कर आता।

पाठ भी करता और जहां तक हो सकता हर रोज सुबह

गुरुद्वारे जाता। गुरुद्वारा हमारे घर के नज़दीक ही था। पहले पाठ करता फिर गुरुद्वारे जाता। गुरुद्वारे से लौटकर नाश्ता करता। मेज़ पर बैठी नाश्ते के लिए उसका इन्तज़ार करना मुझे अच्छा-अच्छा लगता था। खुद भी जाता और अक्सर बच्चू को भी साथ ले जाता। प्रसाद के लालच में बच्चू हर रोज़ तैयार हो जाता। सुबह जब वो पालथी मारे पाठ कर रहा होता, बच्चू चुपके से जाकर उसकी गोदी में बैठ जाता।

कमलजीत में मज़हब का एतकाद उसके जीवन का एक अंग था। बहुत देर के बाद मैंने महसूस किया जैसे सोने के समय वो सोता था, जागने के समय वो जागता था, खाने के समय खाता था वैसे ही सुबह-शाम उसकी प्रार्थना उसके लिए ज़रूरी थी। कभी किसी कारण अपना नियम वह पूरा न कर सकता तो बेचैन-बेचैन लगता। और फिर कमलजीत की इस ईश्वर-भक्ति को मैंने उसकी ज़िन्दगी का सलीका मान लिया। जैसे बाज़ार जा रही मैं उसके साफे रंगाने के लिए रंगरेज़ को दे आती वैसे ही उसके 'पाठ' और गुरुद्वारे के नियम को हमने स्वीकार कर लिया था। कई बार मुजंग में से गुज़र रहा तांगा रुकवाकर वो तावला-तावला ऊपर गुरुद्वारे हो आता और मैं बाहर तांगे में उसका इन्तज़ार कर लेती। मुजंग का गुरुद्वारा बड़ा मशहूर था। दूर-दूर से वहां लोग दर्शनों के लिए आते थे।

मुजंग से ज़्यादा मशहूर गुरुद्वारा डेरा साहब था। हर साल गर्मियों के दिनों में यहां जोड़ मेला लगता था। तीन दिन शबद कीर्तन होता, जलूस निकाला जाता, लंगर लगाए जाते। उन दिनों कमलजीत सुबह-शाम डेरा साहब जाया करता। मई-जून का महीना और लाहौर की गरमी, मैं सोचती कमलजीत कहीं बीमार न हो जाए। जितनी बार वो जाने के लिए तैयार होता, गुरुद्वारे होकर लौटता, मैं उसके मुंह की ओर देखती रहती। उसको रोक भी न सकती, लेकिन इस गरमी में इतनी दूर उसका सायकिल पर जाना, मुझे बड़ा डर लगता।

और फिर एक बार मैं खुद उसके साथ जोड़ मेले जाने के लिए

तैयार हो गई। मैं और हमारी पड़ोसिन कमला।

गुरुद्वारा उससे भी कहीं दूर था जितना मैं सोचती थी। शहर के बाहर एक नुक्कड़ में। कमलजीत ने हमें बताया—जिस स्थान पर गुरुद्वारा बना है वहां कभी रावी दरिया बहता था, सामने किले की दीवारों से टकराता हुआ। रावी दरिया के किनारे सिक्खों के पांचवें गुरु श्री गुरु अर्जुन देव जी को मुगल बादशाह जहांगीर ने तपते तवे पर बिठाया था। पानी की उबलती देग में उतर जाने के लिए मजबूर किया था। और फिर जब ये हुक्म दिया कि उन्हें गाय की खाल में मढ़ दिया जाय तो 'तेरा मांणा मीठा लागे' का जप करते गुरु जी ने अपने प्राण त्याग दिए थे। गुरु जी को यूं कष्ट दिये जा रहे सुनकर मियां मीर दौड़ता हुआ आया। एक सन्त की ये दशा देखकर फ़कीर तड़प उठा—"मैं लाहौर की ईंट से ईंट बजा दूंगा। मैं मुगल राज की जड़ों को उखाड़ फेंकूंगा।" लेकिन गुरु अर्जुन देव ने आकाश की ओर देखते हुए मियां मीर को भगवान् की रज़ा मानने की राय दी। मियां मीर बेबस लहू के आंसू बहाता देखता रहा और गुरु अर्जुन देव अमर हो गये।

उस महान् आत्मा की याद में ये गुरुद्वारा बना है। अब हर साल यहां जोड़ मेला लगता है, इस बात की याद में कि तशद्दुद के सामने अहिंसा की हमेशा जीत होती है।

संगमरमर के दर्शनी दरवाज़े में से गुज़रकर सामने एक खुला-सा आंगन है, जिसमें संगमरमर का फर्श लगा हुआ है। इस आंगन के बाएं ओर सफेद संगमरमर की समाधि बनी है जहां गुरु अर्जुन देव शहीद हुए थे। आगे बढ़कर एक विशाल हाल कमरा है जहां शबद कीर्तन हो रहा था। गुरुद्वारे के अन्दर, बाहर, सहन में, सड़क पर, पीछे खुले मैदान में, दाएं-बाएं जहां कहीं भी जगह थी लोग पंक्तियों की पंक्तियां बैठे हुए 'धन्य गुरु अर्जुन देव, धन्य गुरु अर्जुन देव' करते श्रद्धा में उस महान् शहीद के लिए अश्रु बहा रहे थे। किसीका लाल सुर्ख हुए तपते तवे पर बैठ जाना, ऊपर से जलती हुई रेत को अपने शरीर पर सहन कर लेना और सत्य का साथ न छोड़ना। किसीका उबलती हुई देग में कूद जाना, अपने

शरीर को छाले-छाले करवा लेना लेकिन सच्चाई का दामन न छोड़ना। वल होकर भी किसीका निर्बल बने रहना। मान होकर भी किसीका निर्मान हो जाना। आज जहांगीर को कौन पूछता है, इतिहास के किसी मामूली पन्ने की नुक्कड़ में सिकुड़कर रह गया है, और सत्य और इन्साफ के उस शैदाई के लिए लाखों लोग कुर्बान होने के लिए तैयार थे। 'धन्य गुरु अर्जुन देव, धन्य गुरु अर्जुन देव' कहते उनकी जबान नहीं थकती थी।

कुछ इस तरह मैं सोच रही थी कि गुरुद्वारे से निकलते कमला की साड़ी का पल्लू उसके सिर से खिसक गया और न कमला ने और न हममें से किसीने इसका ख्याल किया और एक सेवादार ने आकर कमला को टोका। जाती मर्तबा भी उसके सिर से पल्लू उतर गया था। और किसीने उसे कहा था, 'वीवी, अपना सर ढक ले।' गुरुद्वारे जाने से पहले कमलजीत ने हमें इस बात से सचेत कर दिया था। मैंने तो अपनी चुनरी के एक पल्लू को सर से घुमाकर दूसरे हाथ से पकड़ लिया था।

और फिर वैसी की वैसी मैं बाहर टैक्सी में आ बैठी। गुरुद्वारे से हम कितनी दूर निकल आये थे तो भी मैं चुनरी का पल्लू वैसे का वैसा सर पर लिए हुए थी। शायद इसलिए कि फूले हुए मेरे बालों पर चुनरी का यू ओढ़ लेना मुझे अच्छा-अच्छा लग रहा था। शायद इसलिए कि अमर शहीद गरु अर्जुन देव की याद अभी तक मेरे अंग-अंग में समाई हुई थी, और उनकी याद में चुनरी मेरे सिर से नहीं उतर रही थी।

और फिर अचानक वादल आ गए। ठंडी-मीठी हवा चलने लगी।

घर पहुंचने से पहले कमलजीत ने फरमायश की कि माल रोड के एक होटल में कुछ देर के लिए सुस्ता लिया जाय। शाम हो रही थी। मौसम सुहाना हो गया था। होटल खचाखच भरा हुआ था। इतना शोर, इतनी गहमागहमी, कान पड़ी आवाज़ नहीं सुनाई देती थी। कमलजीत, कमला और मैं एक कोने में बैठे आइसक्रीम खा रहे थे। एक के वाद एक, कमलजीत ने तीसरा

ग्राडंर दिया था। मुझे पता था कमलजीत को खुद ग्राइसक्रीम का कोई शौक नहीं था। ग्रक्सर उसका गला खराव रहता था। ग्रजीव ग्रादमी था। हमें खिलाने के लिए खुद भी खा रहा था, इस शौक से, इस चाव से जैसे किसीने ग्राइसक्रीम की दावत की हो।

सामने होटल में बैंड बज रहा था। कोई प्यारी धुन थी। लोग मस्त-से हो रहे थे। नाचने वाले जोड़े नाच रहे थे।

"मैं नहीं सोचता, यूं मर्द-ग्रौरतों का नाचना किसी हिन्दुस्तानी का सत्य धर्म कायम रख सकता है।" कमलजीत ने कमला की ग्रोर देखते हुए उसे छेड़ा। कमला को वाल रूम डांसिग का बड़ा शौक था। जब से हम ग्राये थे, नृत्य के संगीत को सुनते ही उसका ग्रंग-ग्रंग जैसे थिरक रहा था। बार-बार वो पांव से, हाथों से, टांगों से ताल देने लगती थी।

"सत्य धर्म कायम रखने के लिए तो हम नाचते हैं, नहीं तो कई घरों में डाके न पड़ जाएं," कमला ने जवाब दिया ग्रौर फिर हम सब हंसने लगे।

यूं हम हंस रहे थे कि तीन लड़कियां ग्राईं ग्रौर मुस्कराती हुई हमारे मेज के गिर्द कुर्सियां खींचकर बैठ गईं।

लम्हा भर के लिए वो झिझकीं, फिर उनमें से एक ने मेरा नाम पूछा। मैंने ग्रपना नाम बताया। फिर उनमें से एक उठी ग्रौर मेरे सर से चुनरी का पल्लू हटाकर मेरे बालों को छू-छूकर देखने लगी। दूसरी मेरी उंगलियों को, नाखूनों को देख रही थी। तीसरी मेरे गालों के तिल की प्रशंसा कर रही थी। ये लड़कियां ग्रचानक मुझे ग्रान चिमटी थीं। फिर उनमें से एक ने हमें बताया—"ग्राज की शाम इस होटल में हुस्न की मलिका चुनी जानी है। ग्रौर हमें लगता है हम ग्रपने फैसले पर पहुंच गई हैं।" ग्रभी वो बोल ही रही थी कि उनमें से एक ने इशारा किया ग्रौर कई फोटोग्राफर टूटकर जैसे क्लिक-क्लिक मेरी तस्वीरें उतारने लगे। ग्रौर फिर सारे होटल में तालियों की गूंज मच गई। मैं शरमा रही थी, घबरा रही थी, पसीना-पसीना हो रही थी कि वो तीन लड़कियां मुझे पकड़कर स्टेज पर ले गईं, ग्रौर उन्होंने एक मुकुट मेरे सर पर

रख दिया। फिर तालियां बजीं, फिर लोगों ने वाह-वाह की। मुझे जरा अच्छा नहीं लग रहा था, लेकिन कमलजीत के जैसे धरती पर पांव न लग रहे हों। जो कुछ कोई कहता, बिना मुझसे पूछे हां कर देता। मुझे लगता जैसे मैं कोई ख्वाब देख रही हूं। हर कोई मुझे बधाइयां दे रहा था। इस अचानक तूफान की लपेट में आई मुझे पता नहीं लग रहा था कि मैं कैसे होटल में से निकलूं।

अगली सुबह अखबारों में मेरी तस्वीर छपी थी। सर पर दुपट्टा लेकर घूमने का उस दिन से लाहौर में रिवाज पड़ गया। आज तक मैं सर पर दुपट्टा लेकर बाहर निकलती हूं। और लोग मेरी ओर इशारा करके एक दूसरे को मेरे बारे में बताते रहते हैं।

१३

और फिर एक घटना हुई, जिसने हमें समूचा अपने आप में डुबो लिया, मुझे और फरहाद को। कमल जैसे हमें बिल्कुल भूल गया। पति-पत्नी हम अकेले बैठे खुसर-पुसर करते रहते। हमें समझ न आती हम क्या करें, क्या न करें।

सब निशानियां ठीक थीं। हमारे यहां एक और बच्चा आ रहा था। और मैं इसके लिए बिल्कुल तैयार न थी। फरहाद भी मेरे साथ सहमत था कि हमारे यहां और बच्चा नहीं होना चाहिए। और हमें कुछ समझ नहीं आ रही थी।

कभी-कभी मैं सोचती, फरहाद की ये बदतमीजी थी। ये उसकी चालाकी थी। वो मुझे अपने चंगुल में और मजबूती से जकड़ रहा था। और मैं बात-बात पर खीझने लगती। कितने-कितने वक्त न खाती, न पीती, कभी कोई बहाना करती, कभी कोई बहाना बनाती।

लेकिन फरहाद तो खुद इतना परेशान था, उसकी तो खुद रात सोए-सोए नींद खुल जाती और मुझे उसपर बड़ा तरस आता। मैं जाल में पकड़ी बेबस हिरनी की तरह उसकी ओर विट-विट देखने लगती। वीरान-वीरान पलकें, उदास-उदास नज़रें।

ग्रौर फैसला यह हुआ कि उस दिन फरहाद दफ्तर जाने के बजाय इस बात का इन्तज़ाम करने जाए कि कोई डाक्टर मेरा आपरेशन कर मुझे इस मुसीबत से छुटकारा दिलाए।

मिल-मिलाकर उसने एक अंग्रेज़ डाक्टर ढूंढ़ी जो ये काम चोरी-छुपे करती थी। जितनी भी फीस उसने मांगी फरहाद ने उसे पेशगी दे दी। और उस शाम उसने हमारे यहां आकर आपरेशन करने का इकरार कर लिया। मुझे तसल्ली हो गई। अंग्रेज़ लेडी डाक्टर मुझे देख भी गई। जिन-जिन दवाइयों की उसे ज़रूरत थी फरहाद बाज़ार से खरीद लाया। एक कमरे को, जिसके साथ गुसलखाना लगा हुआ था, खाली कर दिया गया।

क्योंकि फरहाद दफ्तर नहीं गया था और कमलजीत के साथ उसने इसका कोई ज़िक्र भी नहीं किया था, दोपहर खाने के लिए कमलजीत जब घर लौटा, सीधा हमारे कमरे में आया।

कमलजीत मुझसे पूछ रहा था—"फरहाद आज दफ्तर क्यों नहीं आए?"

मैं चुप थी। कमलजीत से मैं झूठ कैसे बोल सकती थी? कमलजीत, जिसकी पलकों तले हमेशा सच झलक रहा होता, मैं उससे कैसे झूठी बात कर सकती थी? और मेरे पास बैठे फरहाद ने मेरी मुश्किल पहचानते हुए उसे टालने की कोशिश की। लेकिन कमलजीत को वो भी न टाल पाया। वो भांप गया कि कोई न कोई बात ज़रूर थी जो हम उससे छिपा रहे थे।

खाना खाने के बाद कमलजीत ने फिर पूछा। फरहाद दफ्तर जो नहीं जा रहा था।

आखिर कमलजीत से कब तक छुपाया जा सकता था। शाम को जब वो घर लौटेगा तो उसे पता चल जाएगा। और फरहाद को ये कहकर कि वो उसे बेशक बता दे, मैं किसी बहाने उस कमरे से चली गई।

फरहाद ने कमलजीत को कहा—"मसला एक अनचाहे बच्चे का है और हमने फैसला कर लिया है कि किसी तरह इसे आने से रोक दिया जाए। आज शाम तुम्हारी भाभी का आपरेशन हो जाएगा।"

कमलजीत ने सुना ग्रौर जैसे वो दीवाना हो गया। "ये नहीं होगा, ये कभी नहीं होगा।" वो एक ही रट लगाए हुए था। उसका चेहरा घबराहट में चिंता में उतर आया था। जैसे किसीके हाथ में से किसीकी दुनिया खिसक रही हो। कमलजीत कितनी देर फरहाद से बहस करता रहा। फिर जब मैं उस कमरे में ग्राई तो मुझसे बिगड़ने लगा। "भाभी जान, ये कभी नहीं होगा। यह जुल्म ग्राप किस तरह कर सकते हैं? कोई बात भी हो। तौबा-तौबा!"

फरहाद के मुह से निकला—"हम एक ग्रौर बच्चे का बोझ बर्दाश्त नहीं कर सकते।"

"ये बच्चा मेरा होगा," कमलजीत जैसे फरियाद कर रहा था।

ग्रौर फिर उसने मेरी ग्रोर देखा, "भाभी जान···" ग्रौर इससे ज्यादा उसके मुंह से कुछ न निकला।

फरहाद पहले ही चुप बैठा था ग्रौर कमलजीत की फरमाइश का ठुकरा सकना मेरे लिए मुमकिन नहीं था। यूं लगने लगा जैसे एक ग्रौर बच्चे के खिलाफ़ जितनी बातें हमने सोची थीं सब हमें भूल-सी गईं। कोई भी बात ऐसी नहीं सूझ रही थी जिसे लेकर कमलजीत से बहस की जाय। उसका ईमान, उसकी मुहब्बत, उसकी सच्चाई ग्रत्यन्त प्रबल शक्तियां थीं।

ग्रौर फिर फरहाद को टैक्सी में बिठाकर कमलजीत उसे लेडी डाक्टर के पास ले गया। उससे कह ग्राया कि उस शाम उसे ग्राने की ज़रूरत नहीं थी।

१४

'भाभी जान, ये बच्चा मेरा होगा,' कमलजीत के ये बोल मुझे याद ग्राते ग्रौर मेरी मुस्कानें फूट निकलतीं। सितारों भरे ग्रासमान को देखती हुई, शबनम से पिरोये घास पर चलती, खिड़की में खड़ी मोटरों, तांगों, साइकिलों से भरी सड़क को निहारती मेरे कानों में कमलजीत के ये बोल गूंजने लगते ग्रौर मैं खिल-सी जाती।

ग्रजीब ये साझापन था!

मैं दीवानी हो रही थी।

'भाभी जान, ये बच्चा मेरा होगा,' कमलजीत के ये बोल मुझे याद आते तो मुझे मेरे जी का मिचलना, बैठे-बैठे चक्कर आना, आधी-आधी रात तक आंख न लगना, ये सब कुछ अच्छा-अच्छा लगने लगता। 'भाभी जान, ये बच्चा मेरा होगा,' कमलजीत के ये बोल मुझे याद आते और मैंने मन ही मन में आने वाले बच्चे के लिए तैयारियां करनी शुरू कर दीं। बैठे-बैठे उसके स्वागत के सपने देखती रहती। कभी मैं उससे बातें कर रही होती। 'भाभी जान, ये बच्चा मेरा होगा,' कमलजीत के ये बोल मुझे याद आते और मैं हैरान होती। उस दिन फरहाद के साथ मैं इस बच्चे से जान छुड़ाने के लिए कैसे लड़ पड़ी थी। मैंने तो उसका मुंह-सर नोंच लिया था। एक शेरनी की तरह मैं उसपर टूट पड़ी थी। और फिर कमलजीत के समझाने पर कैसे मैंने हथियार फेंक दिए थे। एक बोल भी तो मैं नहीं बोल सकी थी।

सोचते-सोचते मुझे अपने आप से डर लगने लगता।

फिर अचानक खबर आई, कमलजीत की बदली पेशावर को हो गई है। मैंने सुना और मुझे ऐसा लगा जैसे किसीके हाथों से जन्नत छिन जाए। मुझे चारों ओर अंधेरा-अंधेरा महसूस होने लगा। मुझे खाना-पीना भूल गया। एक बेचैनी मुझे हर वक्त घेरे रहती, मुझे अपने आसपास वीरान-वीरान लगता। फिर मैं सोचती—कमलजीत के साथ मेरा क्या रिश्ता था कि मैं उसकी इस तबदीली पर परेशान हो रही थी? क्यों मैं उसके जाने की सुन-कर यूं उदास-उदास हो रही थी?

एक मुसाफिर था, गाड़ी के सफर में जिससे मेल हो गया, सफर के कुछ पल सुहाने गुज़र गए और फिर वो अपनी राह चला गया।

कमलजीत चार दिन के अन्दर-अन्दर चला गया। जैसे किसी-से कोई चीज़ नोच ले। मुझे लगता मैं अपने आप से कुछ कर लूंगी। मुझसे कुदरत का ये अन्याय नहीं बर्दाश्त होगा। आखिर कमलजीत से मैं क्या मांगती थी? किसी वृक्ष की छाया में बैठने

वाले वृक्ष का क्या उतार लेते हैं ?

और फिर लाहौर में मेरा दिल बिल्कुल न लगता। फरहाद की भी ये मर्ज़ी थी कि कुछ दिन मैं दिल्ली अपनी अम्मी को मिल आऊं। दिल्ली गए मुझे कितनी देर हो गई थी।

१५

जब भी कभी मैं बाहर से दिल्ली जाती और जो कोई भी मुझे स्टेशन मिलने आता, मेरे लिए बुर्का ले आता। इसे पहनकर मैं अपनी अम्मी की गली में दाखिल हुआ करती थी। लेकिन इस बार बुर्के को देखकर मैं हंस दी और जो कोई भी उसे लाया था मैंने उसे लौटा दिया।

मेरी अम्मी का ड्राइवर फौजा सिंह नाम का एक पंजाबी सिक्ख था। रास्ते में मोटर चलाता कहने लगा—

"बीबी, पर्दा अख दा हुंदा ए।"

"आहो।"

"बुर्के दा पर्दा पुरानी गल हो गई ए।"

"आहो, फौजा सिंह।"

"साडे यां कोई पर्दा नहीं करदा पर मजाल मजाल ए······।"

"आहो, फौजा सिंह।"

फौजा सिंह से मैं पंजाबी में बातें करने की कोशिश कर रही थी। मुझे पंजाबी में बात करते सुनकर घरवालों को अजीब-सा लगा।

"भाभी जान, जब आप पंजाबी बोलती हैं तो यूं लगता है जैसे चमेली की कलियां खिल रही हों।" कमलजीत ने एक बार कहा था।

"कमलजीत, तुम तो दीवाने हो," मैंने अपने दिल ही दिल में उसे जवाब दिया।

सोचती-सोचती मैं बच्चू के साथ खेलने लगी।

"बच्चू, डैडी कहां ?"

"दूर।"

"वच्चू, कमलजीत चाचा कहां ?"

"बहुत दूर।"

हां, वो बहुत दूर चला गया था। मैं उससे भी दूर चली आई थी। कई लोग मौत के डर से आत्मघात कर लेते हैं।

लेकिन मैं ये क्या सोच रही थी। मैं दिल्ली आई थी ताकि लाहौर की सब यादें भूल जाऊं। आखिर कमलजीत मेरा क्या लगता था ? क्या रिश्ता था मेरा उसके साथ ? और मैंने उसकी याद को दिल के एक कोने में समेट लिया।

दिल्ली में एक शाम मेरी मुलाकात यास्मीन से हो गई। कितनी देर से हम दोनों ने एक-दूसरे को खत नहीं लिखा था। आजकल यास्मीन के घरवाले की वदली दिल्ली को हो गई थी। यास्मीन को देखकर मुझे यूं लगा जैसे किसीको कोई खोई हुई चीज मिल जाय। सारी वो शाम यास्मीन और मैंने कनाट प्लेस में गुज़ारी। हंस रहीं, बातें कर रहीं, कुछ खरीद रहीं, कुछ खा रहीं।

और फिर यास्मीन को एक दोस्त मिल गया। इस तरह दीवानों की तरह उसे टूटकर मिली कि मुझे उससे मिलाना ही भूल गई। मैं बिट-बिट उसकी ओर हक्की-बक्की देख रही थी। ये कोई पंजाबी सरदार था। फौज का अफ़सर। जितनी देर कनाट प्लेस में रहे वो बातें करते रहे। फौजी अफसर यास्मीन का हाथ अपने हाथ में पकड़े रहा। और अगली शाम क्लब में मिलने का इकरार कर आखिर वो चल दिया। दूर पीपल के नीचे खड़ी जीप में से हार्न वजा-वजाकर उसे बार-बार बुलाया जा रहा था। जाने से पहले सरदार फौजी अफसर ने मुझे भी आने के लिए कहा। केवल कहा ही नहीं वल्कि इसरार किया कि मैं जरूर आऊं। यास्मीन ने मेरी ओर से भी हां कर दी। और फिर बाकी शाम बार-बार मुझे याद दिलाती रही कि अगले दिन मैं जरूर तैयार रहूं, वो मुझे लेने आयेगी।

उन दिनों कनाट प्लेस जैसे सिक्ख फौजी अफसरों से भरा रहता था। जंग जोरों से हो रही थी। मेरा ख्याल था, सरदार

अफसर इसलिए ज़्यादा प्रतीत होते थे क्योंकि उनके साफ़े, उनका क़द-आकार दूसरों से फ़र्क़ था। जीपें लिए घूम रहे हर अफसर के साथ एक-एक, दो-दो सुन्दर पंजाबिनें ज़रूर होतीं।

यास्मीन कहती—"सरदार फौजी अफसरों से दोस्ती करना आजकल रिवाज हो गया है। हर फैशनेबल लड़की किसी न किसी सिक्ख फौजी अफसर से ज़रूर दोस्ती करती है। ज़ालिम जंग में लड़ भी कैसे रहे हैं। जिधर-जिधर जाते हैं बस सफ़ाई करते जाते हैं और इनकी बहादुरी की कहानियां सुनतीं, नौजवान लड़कियां, उनके लिपस्टिक से रंगे होंठ खुले के खुले रह जाते हैं।"

कोई बात तो कभी सीधी करे, मैं सारी उमर यास्मीन पर हैरान होती रही थी। मुझे उसकी किसी बात पर एतबार नहीं आता था।

"तुम भी बचकर रहना। आजकल सरदार फौजी अफसरों से दोस्ती करने की बीमारी फैली हुई है।" यास्मीन मुझे छेड़ रही थी।

और मैं अपने दिल को टटोलने लगी। यास्मीन मुझे घर तक पहुंचाकर गई। अपने कमरे में अकेली बैठी मैं कितनी देर नशे-नशे में डूबी जा रही थी।

और फिर बच्चू आकर मेरे साथ खेलने लगा। मेरी जान का टुकड़ा मेरे गालों पर गाल रखकर ऊंघने लगा। बड़ी मुश्किल से मैंने उसे मनाकर जल्दी-जल्दी खाना खिलाया। खाना खाते ही वो सो गया।

'कमलजीत चाचा की तरह है। रात का खाना खाकर चाहे उसे कोई कुछ कर ले कमलजीत कहीं नहीं जा सकता था। इधर से खाना खाता उधर जाकर सो जाता बच्चों की तरह।'

"कमलजीत चाचा की तरह," मेरे होंठों ने गुनगुनाया और बच्चू को पलंग पर लिटाते हुए मैंने उसके माथे को लाड़ में चूम लिया।

अगली शाम यास्मीन वक्त से कोई एक घण्टा पहले आ गई। जितनी देर मैं तैयार होती रही, अम्मी के पास बैठी इधर-उधर की बातें करती रही। यास्मीन ने मेरी अम्मी को बताया कि अपने फालतू

वक्त में आजकल वो कपड़े का व्यापार करती थी। अपने रसूख से, फौजी अफसरों की मार्फत, या सिविल सप्लाई वालों की मदद से वो बढ़िया से बढ़िया कपड़ा खरीद लेती थी और घर दर्ज़ी बिठाकर अपनी जान-पहचान के लोगों के लिए कपड़े सिलवा देती थी। एक तो कपड़े पर कंट्रोल होने की वजह से वो कपड़े का ब्लैक करती थी और दूसरे अच्छे दर्ज़ियों की मदद से नए-नए फैशन के सूट बनवाकर वो नफा कमाती थी। अपने वस्त्र तो सारे उसके मुफ्त में बन जाते थे।

मेरी अम्मी यास्मीन की बातें सुन-सुनकर हैरान हो रही थी। यास्मीन के कटे हुए बाल, यास्मीन की छितराई हुई भवें, यास्मीन की कजराई हुई पलकें, यास्मीन के चेहरे का मेक-अप, यास्मीन का बिना आस्तीनों का जम्पर यों तंग सिला हुआ कि पहनने वाली के अंग-अंग की गोलाई दिखाई दे रही थी। जब से आई एक के बाद एक सिग्रेट पिये जा रही थी।

सिग्रेट पिये जाती और मेरी अम्मी को अपने बिज़नेस के ढंग बताए जाती। कनाट प्लेस की बड़ी-बड़ी दूकानों से आर्डर ले जाती थी। क्लब में उसकी सहेलियों के अक्सर कपड़े उसीकी मार्फत बनते। किसीके यहां बच्चा होता, उसके दोस्त-रिश्तेदार बच्चे को कपड़े देना चाहते, यास्मीन उनको इस तरह के तोहफे तैयार करवा देती। अत्यन्त सुन्दर ढंग से पैक करवाती और जहां पहुंचाना होता उसे पहुंचा आती। उसने कोई ज़्यादा आदमी नौकर नहीं रखे हुए थे। ज़्यादा काम वो खुद अपने हाथों से करती थी।

मेरी अम्मी हैरान यास्मीन के मुंह की ओर देख रही थी कि वो आदाब कर, मुझे साथ लिए, चल पड़ी।

मैंने यास्मीन को समझाया—"यास्मीन, तुम बातें कम किया करो।"

"हां-हां, मुझे भी लगता है कि मैं ज़रूरत से ज़्यादा ही बोलती हूं।" और यास्मीन फिर बोलने लगी। इतनी बातें उसे करनी होती थीं कि दूसरों को कभी मौका न देती।

क्लब में यास्मीन का घरवाला उसका इन्तज़ार कर रहा था।

मैं उसे कितने दिनों के बाद मिली थी। हम बातें करने लगे। हम बातें कर रहे थे कि यास्मीन किसी और मेज़ पर किसीको मिलने के लिए चल दी। उस मेज़ से अगले मेज़ पर। उससे फिर अगले मेज़ पर। कुछ देर के बाद मैंने इधर-उधर नज़र दौड़ाकर देखा यास्मीन कहीं भी दिखाई नहीं दे रही थी। यास्मीन का घरवाला मुझसे लाहौर के मौसम और दिल्ली के मौसम की बातें कर रहा था। लड़ाई की ताज़ा खबरों के बारे में अपनी राय दे रहा था। लड़ाई के कारण हर रोज़ बढ़ रही महंगाई पर चिन्ता कर रहा था।

मैंने कहा—"अच्छा है, जितनी महंगाई होगी उतनी ही यास्मीन की बिज़नेस चलेगी।"

और वो हंसते-हंसते कहने लगा—"यास्मीन तुम्हारी सहेली तो पगली है।" ये कहते हुए वो बात टाल गया।

कुछ देर के बाद यास्मीन लौटी। उसका सरदार दोस्त उसके साथ था। कोई ज़रूरी काम पड़ जाने के कारण उसे देर हो गई थी। कितनी देर बार-बार वो माफ़ी मांगना शुरू कर देता।

फिर ह्विस्की के दौर शुरू हो गये। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि यास्मीन ने शराब नहीं शुरू की थी। कुछ देर और यास्मीन बैठी-बैठी सहसा हंसने लगी और फिर हंसते-हंसते कई वर्ष पहले उसने अपनी शराब पीने वाली घटना अपने खाविन्द और अपने दोस्त को बताई। मैं हैरान उसके मुंह की ओर देख रही थी। यास्मीन सचमुच मुझे कभी-कभी अचम्भे में डाल देती थी।

बहुत देर नहीं हुई थी कि आरकेस्ट्रा बजना शुरू हो गया। आरकेस्ट्रा बजा और एक-एक करके जोड़े नाचने के लिए हाल में उतरते गए। एक धुन, दूसरी धुन और हाल भर गया। तीसरी धुन पर यास्मीन अपने फौजी दोस्त के साथ गई। यास्मीन का शौहर कभी नहीं नाचा था। जाने से पहले यास्मीन मुझे कान में कहने लगी—"कम्बख्त, काश जो तू नाचती होती! सारी क्लब की नज़रें आज शाम तुझपर हैं।"

बांह में बांह डाले यास्मीन अपने फौजी दोस्त के साथ नाच रही थी। यास्मीन, उसका दोस्त और और कई जोड़े। आरकेस्ट्रा की

धुन के साथ मिलकर घूम रहे सैकड़ों पांव, रंग-बिरंगी साड़ियां, रंग-बिरंगे सूट, यूं लगता जैसे ये लोग हवा में झूल रहे हों। आरकेस्ट्रा अब एक के बाद एक धुन बजा रहा था। और नाचने वाले वहीं के वहीं खड़े क्षण भर के लिए सुस्ताकर फिर नाचना शुरू कर देते। और फिर ताल तेज़ होना शुरू हो गया। और तेज़। ज्यों-ज्यों रात गुज़रती आरकेस्ट्रा का ताल तीव्र होता जाता और फिर यूं लगने लगा जैसे नाच रहे ये जोड़े आकाश में उड़ जायेंगे। यास्मीन क्लब में सबसे बढ़िया नाचने वाले नौजवान की बांहों में फिरकनी की तरह घूम रही थी। नाचते-नाचते वो हाल के दरम्यान में सरक गई। यास्मीन की चुनरी, यास्मीन के बाल जैसे उसके साथ उड़ रहे हों। आरकेस्ट्रा की गति और तेज़ हो गई। और तेज़। बन्द आंखें यास्मीन एक नशे में, एक उन्माद में अपने साथी के साथ नाच रही थी। नाचते-नाचते बाकी जोड़े जैसे हारकर, थककर बैठ गए थे। यास्मीन और उसका सरदार दोस्त नाच रहे थे। आरकेस्ट्रा की धुन और तेज़ हो गई। अकेले नाच रहे जैसे उनपर जादू हो गया हो। यूं जान पड़ता था जैसे आरकेस्ट्रा हार जायेगा और ये नहीं थकेंगे। और फिर एक स्वाद शिखर पर पहुंचकर सारे का सारा हाल तालियों से गूंज उठा। यास्मीन और उसका साथी पसीना-पसीना हो अपनी कुर्सियों पर आन बैठे। तालियां कितनी देर बजती रहीं।

१६

अगली सुबह सोकर जब मैं उठी पिछली रात यास्मीन का यों एक मादकता में नाचना मुझे अच्छा-अच्छा-सा लग रहा था। बार-बार उसका अपने सरदार दोस्त की बांह में बांह डाले एक सुर, एक ताल में घूमते जाना मेरी आंखों के सामने आ जाता और मैं एक नशे में आंखें मूंद लेती। कितनी देर मैं यों मज़े-मज़े में लेटी रही।

और फिर मेरे मन ने जैसे मुझे चपत दे मारी—'तुझे यास्मीन का यूं अपने सरदार दोस्त के साथ नाचना अच्छा लग रहा है

क्योंकि कमलजीत सरदार है।'

और मैं सर से लेकर पांव तक कांप गई।

अभी मैं सम्हल भी नहीं पाई थी कि वाहर दरवाज़े पर दस्तक हुई। आज मुझे देर भी कितनी हो गई थी। वाहर धूप निकल आई थी और मैं लेटी हुई थी। मैंने सोचा आया होगी। "आया, बच्चू अभी सोया हुआ है।" मेरा इरादा था, पिछली रात के सुन्दर चित्र अभी कुछ देर और मेरी आंखों के सामने खेलते रहें।

लेकिन वाहर तो लुवना थी। उसे खबर मिली और दौड़ी हुई मुझे मिलने आई थी।

लुवना वैसी की वैसी थी। वैसी की वसी सादा, वैसी की वैसी संजीदा, वैसी की वैसी अपनी लगन में मस्त। आजकल वो खुद भी कांग्रेस में शामिल हो गई थी। मैंने उसके वस्त्रों की ओर देखा। मेरी वात समझकर कहने लगी—"मैंने खद्दर इसलिए नहीं पहना क्योंकि आजकल मैं अण्डरग्राउण्ड हूं।" १९४२ का आन्दोलन कभी-अभी खत्म हुआ था। लुवना के पिता ने इस आन्दोलन में बहुत काम किया था और आजकल वो रूपोश थे। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ कहता, लेकिन न लुवना को न लुवना के घर के किसी आदमी को उनकी कोई खबर थी। लुवना कहती—"कभी-कभी मेरी अम्मी को यूं लगता है जैसे वो शहीद हो गए हैं। इतने दिन तक वो हमें कोई सन्देश न भेजें ये मुमकिन नहीं।" और यूं बातें करते लुवना की आंखें आंसुओं से छलकने लगतीं।

और फिर जितने दिन मैं दिल्ली में रही लुवना हमारे यहां आकर टिक गई। हमारा घर ऐसा था जिसपर किसीको शक नहीं हो सकता था। कई वार लुवना पार्टी के काम से जाती और सारा दिन वाहर रहकर रात को हमारे यहां लौट आती। और तो और, कई बार वो मेरे साथ क्लब गई। नये ज़माने की एक अप-टू-डेट लड़की के पहरावे में वो बड़े-बड़े सरकारी अफसरों के साथ जंग के बारे में बातें करती रहती। किसीको कुछ पता न चलता।

फिर मैंने देखा, यास्मीन ने देखा, एक फौजी मेजर लुवना

पर लट्टू हो गया। लड़का सुन्दर था। मिलनसार, हंसमुख। और लुबना के साथ मुहब्बत थी। लेकिन लुबना अपने पैरों पर पानी न पड़ने देती। ये लड़का भी पंजाबी सरदार था।

और मुझे लुबना का उसे यूं टालते रहना अच्छा न लगता था। लुबना का एक फौजी अफसर के साथ शादी कर लेना एक अनहोनी बात थी, लेकिन तो भी जिस तरह सरदार मेजर लुबना पर दीवाना हो रहा था, जिस तरह लुबना उसे खातिर में नहीं ला रही थी, मुझे ये बड़ा अजीब-अजीब लगता। मेरे मुंह का स्वाद फीका-फीका रहने लगा।

और मेरे मन ने फिर मुझे फटकारा—'तुम्हें ये बुरा इसलिए नहीं लगता कि एक आदमी एक लड़की को प्यार करता है और लड़की उसकी परवाह नहीं करती! तुम्हें ये बुरा इसलिए लगता है क्योंकि मेजर सरदार है और कमलजीत भी सरदार है।'

और मैं पानी-पानी हो गई।

पानी-पानी होने वाली बात तो थी। मैं तो दीवानी हो रही थी। एक शाम मैं अपने कमरे में तैयार हो रही थी। कहीं बाहर जाना था। कमरे की एक नुक्कड़ में रेडियो चल रहा था। रेडियो में कोई गा रहा था—

जान-पहचान हो गई होगी।
राह आसान हो गई होगी।

और लिपस्टिक मेरी उंगलियों से फिसल कर नीचे फर्श पर जा पड़ी। छल-छल मेरी आंखों से आंसू बहने लगे। खिड़की में खड़ी मैं बार-बार ये गीत गुनगुना रही थी—

जान पहचान हो गई होगी।
राह आसान हो गई होगी।

मैंने अपनी राह को कितना मुश्किल बना लिया था। सब अपने पराये कर लिये थे। किसीके साथ अब मैं भीग न सकती थी। हर किसीसे ऊपर-ऊपर की बातें। दिल में एक काबा था जिसके नशे में मदहोश पड़ी रहती।

मुझे लाहौर से चिट्ठी का इन्तज़ार रहता। बाहर जाना होता

तो हमेशा मैं डाक देखकर जाती। बाहर गई होती तो मैं डाक के समय घर ज़रूर आ जाती। लेकिन किसी चिट्ठी में उसका ज़िक्र न होता। फरहाद ने तो कभी इतना भी नहीं लिखा था कि आज कमलजीत की चिट्ठी आई है जिसमें लिखा है—'भाभी जान को आदाब।' शायद उसकी चिट्ठी लाहौर आती ही नहीं थी। मुझे वो क्यों लिखने लगा ? उसे तो शायद मेरा दिल्ली का पता भी नहीं मालूम था।

उस शाम मैं और लुबना कमरे में बैठी ढेर रात गए तक बातें करती रहीं। मैं बहुत उदास थी और उस शाम वो ज़माने-भर की बातें करती मेरा मन बहला रही थी। बार-बार मेरा जी चाहता मैं लुबना को फरहाद के बारे में सब कुछ कह दूं, लेकिन मेरी ग़ैरत को ये गवारा नहीं था। मेरा जी चाहता मैं लुबना को कहूं—लुबना, तुम ठीक थीं और मैं ग़लत। लुबना, तुम हारकर भी जीत गईं और मैं जीतकर भी हारी हूं। पर मेरा स्वाभिमान, एक बात भी मेरी ज़ुबान से नहीं निकली। मैं तो लुबना से माफी तक भी कभी न मांग पाई थी। उस दिन कई वर्ष हुए जब उसने फरहाद के बारे में मुझे इस तरह कहना चाहा था जो मैं सुनना नहीं चाहती थी, मैंने उसे चांटा दे मारा था। मेरा जी चाहता मैं लुबना को कहूं—लुबना, तुम्हारा फरहाद शराबी, कबाबी, ऐयाश है। जैसे कोई फूल किसीसे छीने और उसके सीने में कांटा चुभ जाय।

मैं लहूलुहान पड़ी थी। वो औरत जिसका खाविन्द वफ़ा का दामन छोड़ दे, उस जैसी कोई बदनसीब होगी? मैं सोचती—मैंने फरहाद को क्या-क्या नहीं दिया था! हुस्न, मुहब्बत, वफ़ा सब कुछ ही मैंने उसपर लुटा दिया था। लेकिन एक वो था कि मेरी हर कुर्बानी से अभिज्ञ था।

और उस शाम बार-बार मेरा जी चाहता मैं लुबना के साथ कमलजीत के बारे में बात करूं। उसकी याद आती और मेरा मुंह शहद से जैसे भर आता। मेरी आंखों के सामने सपने लटकने लगते। मेरा अंग-अंग विभोर हो उठता।

फिर मेरे अन्दर से कोई कहता—'तुम अपना कमलजीत लुबना

को दे दो। लुवना अभी कुंवारी है। इनका जोड़ा अधिक सुन्दर होगा।'

उस रात जब लुवना ने अपने फरहाद को मेरे हवाले किया था, कैसे वो तड़पी थी! किस तरह उसकी सिसकियां निकल-निकल जातीं! लेकिन फिर भी ईसार की पुतली, अपने सीने के साथ लगाई, अपनी सबसे सुन्दर सौगात को उसने मेरे हवाले कर दिया था।

और आज मैं ये सोचकर कि कमलजीत लुवना का हो जाय कांप-कांप उठती थी। मेरी आंखों के सामने अंधेरा-अंधेरा छा जाता था।

मैंने लुवना के साथ कमलजीत के बारे में कोई बात नहीं की। यूं लगता था, जैसे ये मुट्ठी खुली तो कोई राज़ अफ़शां हो जायेगा, कोई भेद छुपाये नहीं छुपेगा। और बच्चू था कि हर अखबार में छपी किसी नौजवान सिक्ख की तस्वीर को बार-बार मुझे दिखाता और कमल चाचा, कमल चाचा करने लगता। मैं बार-बार उसे टालती। बच्चू की ओर ध्यान न देती, लेकिन उस रोज बच्चू अपनी ज़िद पर अड़ा हुआ था।

और फिर लुवना ने कहा—"सुबीरा, बच्चू क्या कहता है? पहले तुम उसकी बात तो सुन लो।"

और मेरे हाथ-पांव फूल गए।

"कुछ नहीं, इसको बातें करनी क्या आई हैं, हर समय कुछ न कुछ बोलता रहता है।"

"लेकिन कुछ तो कहता है," और लुवना ने बच्चू के हाथ से अखबार लेकर देखना शुरू कर दिया।

"यास्मीन सच कहती थी," लुवना हंसती हुई बोली—"यास्मीन सच कहती थी—आजकल सिक्खों का दौर है। बच्चू भी किसी सरदार का दीवाना हो रहा है।"

और मैं बिट-बिट लुवना के मुंह की ओर देख रही थी। मेरी आंखें कह रही थीं—'बच्चू नहीं, ये तो बच्चू की मां है।'

लेकिन लुवना को कुछ समझ नहीं आई।

ये राज़ किसीको समझ नहीं आयेगा। मैंने तो इसे दिल की

सबसे गहरी तह में छिपाकर रक्खा हुआ था।

फिर एक दिन अम्मी मुझसे कहने लगीं—"ये कामिल चाचा कौन है, जिसे बच्चू इतना याद करता है ?"

और मैं हक्की-बक्की रह गई। मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था, मैं क्या जवाब दूं।

"फरहाद का कोई दोस्त होगा," मेरी अम्मी ने खुद-ब-खुद मेरी मुश्किल को हल कर दिया।

लुबना के हमारे यहां आ जाने से दिल्ली में मेरा दिल लग गया था। लेकिन कुछ दिन बाद लुबना उदास रहने लगी। उसे किसीने कहा था कि उसके पिता पिछले आन्दोलन में शहीद हो गए थे। और लुबना क्रोध में आकर कहती--"इस जालिम सरकार का हम तख्ता पलटकर रहेंगे।" हर वक्त रुआंसी-रुआंसी-सी, हर वक्त चिन्ताओं में डूबी हुई, जैसे किसीके अन्दर कोई भट्टी सुलग रही हो। बात-बात पर दांत पीसने लगती। बात-बात पर होंठ काटती रहती।

कांग्रेस में कई लोग ऐसे थे जो अक्सर गांधी जी से बेकहना हो जाते। महात्मा के अनुयायी, किन्तु वक्त आने पर जो मन में आती सो ही कर लेते। इस तरह के कुछ लोगों ने पिछले दिनों रेल की पटरियां उखाड़ी थीं, टेलीफोन के तार काटे थे, पुलिस की चौकियों को जलाया था, डाकखानों को लूटा था, सरकारी कर्मचारियों पर हमले किए थे। और जब हालात इस तरह के हों तो दोनों ओर जानी नुकसान होकर रहता है।

गांधी जी ने हिंसा की इन सब कार्रवाइयों की निन्दा की थी, किन्तु जो नुकसान होना था सो हो चुका था। धरती पर तशद्दुद के जो दाग़ लगने थे वो लग चुके थे। लुबना की मां जैसे जिन लोगों को बरबाद होना था वो बरबाद हो चुके थे।

इधर लुबना की ये दशा और उधर सरदार मेजर का लुबना से प्रेम, अजीब मुश्किल थी। मेरी और यास्मीन की कोशिश थी कि ये मुहब्बत बनी रहे, नहीं तो जिस मानसिक अवस्था में उन दिनों वह थी लुबना कुछ भी कर सकती थी।

लेकिन लुबना जैसे व्यक्तियों को कोई बांध नहीं सकता। एक दिन सुबह लुबना गई और फिर वो लौटकर नहीं आई। हमने उसे ढूंढ़ने की कोशिश की लेकिन कामयाबी नहीं हुई। लुबना की मां अपनी बेटी को जानती थी, उसे रत्ती-भर भी चिन्ता नहीं हुई। यास्मीन ने अपने रसूख के साथ कांग्रेस के कुछ लीडरों से पुछवाया, लेकिन कांग्रेस के जिस धड़े के साथ लुबना का सम्बन्ध था उस धड़े का किसीको पता नहीं था।

हमें समझ न आती कि सरदार मेजर को क्या जवाब दें। यास्मीन उसे टालती रही। मुझे उसपर बड़ा रहम आता। कई फौजी अफसर भी कितने भोले होते हैं! सरदार मेजर को देख-देखकर मैं हैरान होती रहती।

१७

फिर फरहाद की चिट्ठी आई। वो पेशावर दौरे पर जा रहा था। कमलजीत की फरमाइश थी—भाभी जान ज़रूर आयें।

और मैं चिट्ठी देखते ही लाहौर पहुंच गई। जब से लुबना ग़ायब हुई थी यूं भी दिल्ली में मेरा दिल नहीं लगता था।

पांच-सात दिन लाहौर में रहकर हमें पेशावर जाना था। ये दिन मेरे तैयारियों में गुज़र गए। फैसला ये हुआ था कि हम सीधे पेशावर जायेंगे। लौटती मर्तबा कमलजीत हमारे साथ रावलपिंडी तक आयेगा। एक-दो दिन रावलपिंडी रहकर हम मरी सैर के लिए जायेंगे। फिर वापिस रावलपिंडी लौटेंगे। वहां से कमलजीत पेशावर चला जायेगा और हम लाहौर आ जायेंगे।

पेशावर के सारे दिनों का साथ, फिर रावलपिंडी का साथ, फिर मरी का साथ। मैं सोचती और मुझे एक सरूर-सा चढ़ा रहता।

पेशावर चलने से एक दिन पहले हम बाज़ार घूम रहे थे कि फरहाद ने कमलजीत के लिए एक नेकटाई पसन्द की। मैं कब से सोच रही थी कि कोई चीज़ मुझे कमलजीत के लिए ले जानी चाहिए और मुझे कुछ पसन्द नहीं आ रहा था। नेकटाई अत्यन्त

प्यारी थी। मैं देखकर खिल-सी गई।

लाहौर से रावलपिंडी, रावलपिंडी से पेशावर, हर क़दम पर मौसम सुहाना, धरती खूबसूरत होती जा रही थी। गाड़ी चनाब नदी से गुज़र रही थी। मैं खिड़की से बाहर देख रही थी। नदी की ठंडी हवा मेरे बालों से खेल रही थी। इस बात का ख्याल कि गाड़ी हर क्षण पेशावर की ओर भागी जा रही है, जहां कमलजीत हमारा इन्तज़ार कर रहा था, मैं बहुत खुश थी। पता नहीं मेरे चेहरे पर क्या अंकित था, फरहाद कहने लगा—"इस दरिया को पंजाबी में हम 'झनांर' कहते हैं। इसके पानी में एक जादू है। इसीके किनारे हीर-रांझे का नाटक खेला गया। इसीके किनारे सोहनी-महिवाल की कहानी चली। और फिर इसीके किनारे मिर्ज़ा अपनी साहिबा को लेकर भाग निकला।"

और मैं वैसी की वैसी खिड़की से बाहर देख रही थी। मेरे बाल उड़-उड़कर मेरे चेहरे पर पड़ रहे थे। दरिया के पानी के साथ खेल-खेलकर आई हवा मेरे साथ किलोलें कर रही थी।

कई दिनों से फरहाद के साथ मेरा सम्बन्ध बिल्कुल किताबी-सा हो चुका था। हम घर का सुख-दुख एक-दूसरे को कह लेते थे लेकिन दिल की बात न कभी वो मेरे साथ करता था न मैं उसके साथ करती थी। जब मुझे उससे ज्यादा दुर्गन्ध आती मैं उससे दूर-दूर रहती, जब उससे मुझे दुर्गन्ध कम आती मैं उससे कोई बात कर लेती। वो दुर्गन्ध जो एक पत्नी को आती है जब उसका पति उसका हक़ मार रहा हो। जितने दिन मैं दिल्ली रही मुझे मालूम था फरहाद मेरे पीछे बेलगाम जो कुछ भी करे सो कम था। और एक बेचैनी मुझे अन्दर ही अन्दर महसूस होती। मेरा दिल जैसे बैठ-बैठ रहा हो। और फिर मुझे कमलजीत की याद आ जाती। डूब रही नाव जैसे किनारे को छोड़कर उबर आए।

फिर मैं सोचती, कमलजीत के साथ मेरा क्या रिश्ता था? क्यों मैं उसे यूं अपना अपना समझ रही थी? आखिर हमारे में क्या साझापन था?

लेकिन मेरा मन हार न मानता। फूल का क्या रिश्ता होता

है उन सैकड़ों आंखों से जो उसकी महक को निहारती हैं ? वुत का क्या रिश्ता होता है पल-पल उसके सामने घिस रही पेशानियों के साथ ? पत्थर की मूर्ति को पता तक नहीं होता और सिदक वाले अपनी मुरादें पूरी करवाकर लौट जाते हैं। फूल की पत्तियों की एक-एक मुस्कान लाख-लाख ज्योतियां जगा देती है।

गाड़ी का सफर, या मैं वच्चू की फरमायशें पूरी करती रही, या वच्चू के साथ कमलजीत चाचा की वातें करती रही, या फिर कमलजीत की वावत सोचती रही। फरहाद हर स्टेशन पर कोई अखवार खरीद लाता। एक किताव उसकी खत्म हुई, उसने दूसरी शुरू कर दी। और फिर शाम हो गई। रात हो गई। सुवह जव हम सोके उठेंगे गाड़ी पेशावर के स्टेशन पर पहुंच चुकी होगी और वच्चू का कमलजीत चाचा सामने खड़ा हमारी राह देख रहा होगा। सारी रात मैं गहरी नींद सोई रही।

अभी मुंह अंधेरा ही था। अभी मैं सोई पड़ी थी कि फरहाद ने मुझे उठाया। गाड़ी पेशावर पहुंच रही थी। जैसे मैंने सोचा था वैसे ही कमलजीत अथाह चाव में सामने खड़ा था। गाड़ी रुकी और वो फरहाद के गले आ लगा। 'भाभी जान अदाव, भाभी जान आदाव' करता वच्चू को उसने उठाकर छाती से लगा लिया। कमलजीत के साथ उसके नौकर थे जो सामान को सम्हाल रहे थे। फरहाद उनकी मदद कर रहा था। और मैं कमलजीत के मुंह की ओर देख रही थी। दीवानों की तरह वच्चू को वार-वार प्यार किए जा रहा था। उससे दिल्ली की, लाहौर की वातें पूछ रहा था। गाड़ी के सफर की वातें पूछ रहा था। रास्ते के स्टेशनों के वारे में पूछ रहा था।

सामान जव सारा वाहर जा चुका, प्लेटफार्म से हम चल रहे थे कि कमलजीत मेरी ओर वढ़ा।

"भाभी जान, आपका क्या हाल है ?"

"हां, कमल, मैं ठीक हूं।"

"आपकी सेहत ?"

"विल्कुल ठीक है। तुम देख नहीं रहे मैं कितनी मोटी हो

रही हूं।"

और फिर कमलजीत जैसे ढूंढ़ने लगा मैं कहां से मोटी हो रही थी। मैं तो किसीको भी पता नहीं लगने देती थी कि तीन महीने के बाद मैं एक बच्चे की मां बनने जा रही थी।

कमलजीत की कोठी रेलवे स्टेशन से चार क़दमों पर थी और हम सड़क पार कर घर तक पैदल गए। सामान नौकरों और कुलियों ने उठाया हुआ था।

कमलजीत की कोठी में मैं एक ओर से घुसी और दूसरी ओर से निकल गई। हमने फैसला किया, चाय हम बाहर लान में ही पीयेंगे। मैं नंगे पांव लान पर घूम रही थी। और फिर एक अत्यन्त प्यारी हिरनी हौले-हौले क़दम एक ओर बाग के पीछे से हमारी ओर आई। मासूम, भोली-भाली, चुप-चुप आई और मेरे हाथ को सूंघने लगी।

"शहरजाद! ये मेरी भाभी जान हैं।" कमलजीत ने जैसे हमारी मुलाकात करवाई।

"कितनी प्यारी हिरनी है!" मुझसे कमलजीत के मुंह की ओर कभी नहीं देखा गया था, "और फिर तुमने इसका नाम कितना प्यारा रखा है!"

बच्चू भी देखकर दौड़ता हुआ आया, फरहाद भी आ गया। और हम सब हिरनी को कभी इधर से कभी उधर से देख-देखकर उसकी प्रशंसा करने लगे।

अभी हम खाना खत्म नहीं कर पाये थे कि एक मोटर आई। कमलजीत के किसी दोस्त ने फल की टोकरी भेजी थी। इतना सारा ताज़ा फल जैसे अभी-अभी तोड़कर लाया हो।

"मेरा एक दोस्त है जिसका अपना बाग़ है। हर चौथे रोज़ इस तरह की एक टोकरी भरकर भेज देता है। और अब क्योंकि आप आए हैं उसका ये तकाज़ा है कि वो एक टोकरी फल की हर रोज़ भेजा करेगा। आपको ये खत्म करनी होगी नहीं तो पठान बड़े ज़ालिम होते हैं।" कमलजीत मेरी ओर देखकर मुस्करा रहा था।

"तुम भी तो पठान हो। रावलपिंडी को तो हम फ्रंटियर ही

गिनते हैं।" मैंने कमलजीत को छेड़ा।

"पोठोहारी पठान ही तो होते हैं," फरहाद ने मेरा साथ दिया।

"हां सच कमल, लौटती वार रावलपिंडी में तुम्हारी पोठोहारिनें देखेंगे।" मुझे याद आया कमलजीत हमेशा कहा करता था, पोठोहार की औरतें वड़ी सुन्दर होती हैं—ऊंची और लम्वी।

"गोरी तो इतनी नहीं होतीं लेकिन खूबसूरत ज़रूर होती हैं।" फरहाद ने राय दी।

"हाय! फरहाद, तूने किसी इलाके की लड़की तो छोड़ी होती दोस्ती किए विना!" मेरे मुंह से अचानक निकल गया, और एकदम हंसते-हंसते हम सव जैसे खामोश हो गए।

मुझे ये वहुत वुरा लगा। कमलजीत के घर के स्वर्ग में हमें अपना कूड़ा विखेरने का कोई हक़ नहीं था।

१८

मैंने कहा—"कमलजीत, रावलपिंडी पहुंचकर तुम्हारी पोठोहारिनें देखने के लिए मैं बेकरार हो रही हूं।"

जव मैं ये कह रही थी, मुझे अपने हुस्न का जैसे अहसास हो। मुझ में एक अजीव निखार आ गया था, पिछले दिनों से जव से आई थी। वहां के पानी में, वहां की हवा में जैसे जादू था। आठों पहर एक नशा-सा मुझे चढ़ा रहता।

यूं भी उन दिनों मैं अत्यन्त सुन्दर लग रही थी। वो दशा जव औरत को खुद अपने हुस्न का एहसास होने लगता है। जैसे मेरे अंग-अंग में से एक रोशनी फूट रही हो। मैं मुस्कराती और मेरी मुस्कान जैसे हवा में घुल-मिलकर रह जाती हो, कुछ इस तरह मुझे महसूस होता। मैं वोलती और मेरे वोलों की प्रतिध्वनि एक संगीत वनकर कितनी-कितनी देर आसपास में गूंजती रहती। मुझे अपने आप से एक भीनी-भीनी सुगन्ध आती।

लेकिन ये तो मैं भूल गई थी कि मेरी हर खुशी चार दिन की होती है। ज्वार-भाटा की लहर जितना मुझे ऊपर उठाकर ले

जाती उतना ही मुझे नीचे ला पटकती है।

और फिर मरी में ठीक ऐसे ही हुआ। मुझे धरती जगह नहीं देती थी कि मैं उसमें गड़ जाऊं। मुझे अपने आप से बदबू आती। मैं सोचती, अपने आपको कुछ कर लूंगी।

आखिर इतना कुछ बता रही हूं तो ये कहानी भी कहनी होगी। ये घाव भी बेनकाब करना होगा। लेकिन कोई पीड़ा इतनी गहरी होती है कि उसका अन्दाज़ा कोई बिरला ही कर सकता है।

उस शाम मैं होटल के कमरे में अकेली थी। जिस होटल में हम ठहरे थे, मरी के एक ओर अत्यन्त सुन्दर स्थान पर था। हमारे कमरे से मीलों दूर घाटी नज़र आती थी। मेरी तबियत ठीक नहीं थी और उस शाम मैं सैर के लिए बाहर नहीं गई। बरामदे में एक आरामकुर्सी पर बैठी बच्चू के लिए मैं स्वेटर बुन रही थी।

क्या देखती हूं, सामने लान उलांघकर एक लड़की फूलों की क्यारियों के पास से होती हुई तेज़-तेज़ क़दम मेरी ओर आ रही थी। मुझे लगा जैसे मैंने इस लड़की को कहीं देखा हो। और अभी मैं कुछ फैसला भी नहीं कर पाई थी कि वो पगडण्डी पार कर, मेरे पास बरामदे में एक कुर्सी खींचकर आ बैठी। बीमार लगती थी, उसका सांस फूल रहा था।

मैं हैरान उसकी ओर देख रही थी। इस तरह किसीका किसी-के पास बिना कुछ कहे-सुने आन बैठना हैरानी वाली बात तो है।

लड़की सुन्दर थी। मोटी-मोटी काली आंखें जिनके भीतर की चमक अभी मद्धम नहीं पड़ी थी। मोटी-मोटी दो चोटियां जिन्हें अभी-अभी गूंथा गया था। कोमल हाथ, संवारे हुए नाखून, हाथों की उंगलियां लम्बी-लम्बी, नाज़ुक-नाज़ुक। ठोड़ी पर तिल, ऊंची लम्बी, बरामदे में घुसी तो बरामदे की उठाई हुई चिक के नीचे से उसे झुकना पड़ा।

ये पूछने के लिए कि उसका नाम मैं जान सकती हूं, मेरे होंठ अभी खुले ही थे कि यो लड़की खांसती हुई खुद-ब-खुद बोलने लगी—

"मैं सब कुछ बताती हूं। अपना नाम भी बताऊंगी, अपना काम

भी बताऊंगी," वो लड़की बोल रही थी। "आज सुबह जब आपका मर्द आपके लिए दवा का बहाना करके बाज़ार गया, वो मेरे पास आया था। अब तो आपको यकीन हो गया है कि मैं कोई इतनी पराई नहीं हूं........."

मैंने आगे बढ़कर उस लड़की के मुंह पर हाथ रख दिया। मेरी आंखों के सामने अंधेरा छा गया।

वो लड़की छल-छल अश्रु रो रही थी।

"मुझे ये आदमी झूठ बोलता रहा कि ये कुंवारा है। मैंने अपना सब कुछ इसपर लुटा दिया, अपना सत्य, अपना धर्म, अपनी मुहब्बत, अपनी जवानी सब कुछ ही तो इसपर कुर्बान कर दिया और फिर मुझे पता चला ये तो ब्याहा हुआ है। एक बच्चे का बाप है और इस बच्चे की मां मुझसे सवाई सुन्दर है। जिस शाम लाहौर में मैंने आपको देखा, मेरे पांव तले से ज़मीन निकल गई। कोई आप जैसी सुन्दर बीवी के साथ भी फरेब कर सकता है? और वो दिन और आज का दिन मुझे ये कम्बख्त हल्का-हल्का बुख़ार होने लगा है। जब भी आपकी मनमोहिनी सूरत मेरी आंखों के सामने आती है मेरे अन्दर जैसे आग-सी सुलग उठती है। डाक्टर कहते हैं कि मुझे तपेदिक है। मैं कालेज से छुट्टी लेकर यहां आ गई हूं कि किसी तरह इस चोट को भूल सकूं और ये कहीं से खबर निकालकर यहां भी आन पहुंचा है। आज सुबह मुझसे माफियां मांग रहा था......।"

लड़की अविरल आंसू रो रही थी, मेरी बांह को पकड़े, मेरी उंगलियों के साथ खेल रही थी।

आंसू मेरी आंखों में भी थे। कितनी देर हम दोनों लहू के आंसू रोती रहीं। हल्का-हल्का अंधेरा हो गया था। बाहर गए हुए वो कभी भी लौट सकते थे और फिर उस लड़की ने मेरे हाथ को एक लम्बा-सा प्यार दिया और हौले-हौले क़दम अपनी राह लौट गई। हवा में जैसे झूल रही हो। ये तो नहीं बचेगी, ये तो नहीं बचेगी, मेरा दिल बार-बार कह रहा था।

१९

हारे हुए जुआरी की तरह मैं लाहौर वापस लौट आई।

मरी से रावलपिंडी तक, रावलपिंडी से लाहौर तक मैं अपने आपको सम्हाले रही थी। कोई हंसता तो उसके साथ हंस लेती, कोई खाता तो खा लेती, खेल रहे किसीके साथ खेल लेती। लेकिन लाहौर पहुंचकर मैं ढेरी हो गई। वार-वार मेरी आंखों के सामने पतली-लम्बी उस लड़की की तस्वीर आ जाती। और मुझे लगता जैसे मेरे अन्दर कोई अलाव जल उठा हो। और फिर जैसे वह खांसती थी, मैंने भी उसी तरह खांसना शुरू कर दिया। जैसे उसे हल्का-हल्का बुखार रहता था, मुझे भी लगता मेरा बदन भी वैसा ही तपा-तपा-सा रहता है।

मेरी सेहत खराब होती जा रही थी। और फिर मैं पड़ गई। आजकल मेरा वीमार होना खतरे से खाली नहीं था। मैं लाख कोशिश करती अपने मन को किसी तरह वहला लूं, लेकिन मरी वाली उस लड़की की कहानी वार-वार मेरे कानों में गूंजने लगती।

फिर खबर आई, कमलजीत की बदली लाहौर को हो गई थी।

"या अल्लाह वो आ जाए," मैं दीवानी हो रही थी। मेरा जी चाहता, जब मैं अस्पताल जाऊं उस दिन कमलजीत जरूर शहर में हो।

और वही वात हुई। उधर से कमलजीत आया, इधर मुझे अस्पताल पहुंचाया गया। दो घण्टे के बाद मैं एक बच्चे की मां बन गयी।

दुपहर के बाद कमलजीत मुझे मिलने आया। उसके साथ फरहाद था। अन्दर कदम रखते ही कहने लगा—"भाभी जान, मेरी वेटी कहां है?'

मेरी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई।

और फिर हम सब हंसने लगे।

नर्स वच्ची को लाई।

"फरहाद, ये तो सचमुच मेरी वच्ची है।" कमलजीत ने वच्ची को छाती से लगा लिया।

"तेरी जैसी उंगलियां पतली-पतली, लम्बी-लम्बी," फरहाद ने कमलजीत को छेड़ा।

मुझे बच्ची पर बड़ा लाड़ आ रहा था, "आर्टिस्ट होगी।"

"मां की तरह," कमलजीत ने कहा।

"मैं आर्टिस्ट हूं!" मैंने हैरान होकर पूछा।

"हां, हर वो औरत आर्टिस्ट है जो एक सुन्दर बच्चे को जन्म दे सकती है!" कमलजीत ने जैसे किसी नाटक का कोई अंश दुहराया।

अस्पताल से लौटकर मैं बड़ी खुश थी। कमलजीत, बच्चू, बिट्टो, जीवन एक महक होकर रह गया था, कमलजीत बिट्टो को कितना प्यार करता था! बार-बार फरहाद को याद दिलाता, बार-बार मुझे ताने देता—"अगर मैं न होता तो ये कभी की छिन चुकी होती।" और बिट्टो को सीने से लगाए रहता। या बच्चू के साथ खेलता या बिट्टो के साथ चुहल करता रहता। कमलजीत का और कोई शुगल नहीं था। कभी-कभी मुझे लगता, जब से बच्ची आई थी कमलजीत ने कभी मेरी ओर नहीं देखा था, जैसे वो कभी देखा करता था, ज़माने-भर की अकीदत अपनी आंखों में भरकर। लेकिन कमलजीत तो मेरी ज़िन्दगी में समूचा घुस आया था। अपने अंग के अंग को कोई अलग करके थोड़ा देखता है।

मैं खुश थी, बहुत खुश।

और फिर एक दिन मरी वाली उस लड़की की मुझे चिट्ठी आई—

"दीदी, तुम्हारा सुहाग युग-युग तुम्हें मुबारक हो। कई बार मेरा जी चाहा कि मैं आपको चिट्ठी लिखूं। पर मैं हमेशा टालती रही। अब डाक्टरों का ख्याल है कि बहुत दिन और मुझे नहीं जीना। मैंने सोचा, एक बार फिर परी जैसी अपनी दीदी से मुलाकात करूं—चाहे ये मुलाकात चिट्ठी के रास्ते ही क्यों न हो रही हो। मुझे और कुछ नहीं कहना है, केवल आपके रास्ते सारी औरत जाति को बताना है कि अगर कोई खाविन्द आप जैसी बीवी के साथ अन्याय कर सकता है और आसमान नहीं फटता, अगर कोई पति आप जैसी पत्नी को धोखा दे सकता है और धरती नहीं हिलती, तो फिर भगवान कहीं नहीं, इन्साफ़ कोई चीज़ नहीं।

"मुझे हर रोज़ बुखार आता है, हर रोज़ मेरा वज़न कम होता जा रहा है। हर रोज़ मेरा रंग बदलता जा रहा है। मैं एक-एक पल, एक-एक घड़ी गिन-गिनकर सौ-सौ बार उन दिनों की सज़ा भुगत रही हूं जो दिन मैंने एक देवी-सी बहन के सुहाग के चुराये हैं। चाहे मैंने ये सब कुछ अनजाने में किया, पर चोरी चोरी है, चाहे कोई दिन में करे चाहे कोई रात में करे।

"और मुझमें लिखने की सकत बाक़ी नहीं। मैं कितनी कमज़ोर हो गई हूं!

"खुदा हाफिज़ दीदी!

तुम्हारी बदनसीब बहन"

मैंने हमेशा आज़माकर देखा है चार दिन खुशी के और कोई आकर मुझसे मेरी मुस्कानें छीन लेता है। एक झपट्टा मारकर मेरी हंसी को कोई चुरा लेता है। फिर कुदरत मुझसे वही खेल खेल रही थी। मुश्किल से मैं मरी की उस मुलाकात को भूल सकी थी कि ये चिट्ठी आ गई। सितम ये था कि इस चिट्ठी में भी उसने अपना नाम नहीं लिखा था। उस दिन जब मेरे पास आकर उसने अपनी कहानी कही, उसने सब कुछ बताया, लेकिन अपना नाम बताना भूल गई थी। शायद जान-बूझकर उसने यों किया था। अगर बताना चाहती तो अपना नाम चिट्ठी में तो लिख सकती थी।

२०

जैसे किसी बिल्ली के पंजों में कोई चूहा हो और वो उसे खाने से पहले उससे खेलने लग जाए, कुछ इस तरह ज़िन्दगी मुझसे खिलवाड़ कर रही थी।

मरी वाली लड़की की फिर चिट्ठी आई।

"दीदी, मैं फिर आपको लिख रही हूं। ये दुनिया कितनी प्यारी है! इसको तजा जाता है, न इसमें रहा जा सकता है। उगते हुए सूरज को जब मैं देखती हूं, चहकते हुए पंछियों को जब मैं सुनती हूं, खिलखिला रहे फूलों की सुगन्ध जब आकर मुझे घेरती

है, तो मैं सोचने लगती हूं—ये सब कुछ वैसे का वैसा होगा और मैं नहीं हूंगी। इस तरह की लड़की की मौत कोई आसान बात नहीं। और फिर जवान-जवान हड्डियों में से फूंक निकलती भी तो नहीं। कई बार रात को मैं ये फैसला करके सोती हूं कि अगली सवेरे मैं नहीं उठूंगी, सोई-सोई सिधार जाऊंगी, लेकिन फिर पलक खोलती हूं और वहीं की वहीं अपने आपको पड़ा पाती हूं। सूरज की कोई चंचल किरण खिड़की के रास्ते अन्दर आकर मेरे होंठों से खेल रही होती है। मीठी-मीठी हवा अपने दामन में सुगन्धियां लपेटे मेरे बालों को सहला रही होती है। दूर बहुत दूर तक मादकता में कोई गा रहा—मुझे झुठलाने लगता है। हाय! ये दुनिया कितनी मीठी है!

"पर दीदी, पाप की सज़ा मौत है। और जिसने जितना घोर पाप किया हो उतनी ही कड़वी उसकी सज़ा होती है। डाक्टर कहते हैं कि कोई तिलिस्म ही मुझे बचा सकता है। आखिरी दिन को वो रोक नहीं सकते लेकिन उसे लटका सकते हैं और वो अपना सारा ज़ोर लगा रहे हैं।

"कभी-कभी मैं सोचती हूं—मेरा कसूर क्या है? पर कसूर तो है। कसूर क्यों नहीं? दो पैसे की मटकी खरीदते समय आदमी उसे ठुनकाकर देख लेता है। और इस तरह किसीको देखे-सुने बिना अपने आप उसके हवाले कर देना जैसे मैंने किया, क्या ये कसूर नहीं? कसूर ज़रूर है। और मैं सोचती हूं मैं ये जान देकर अपनी जाति के लिए एक सबक छोड़ जाऊंगी कि औरत ज़ात की ज़िम्मेदारी बड़ी भारी है। ढोरों की तरह किसीके खेत में मुंह मार लेना कहां का न्याय है? किसीके हाथ में कोई सुन्दर चीज़ देखकर झपट्टा मारकर छीन लेना ये कहां की शराफ़त है?

"मुझे केवल एक हौसला है कि आप जैसे सुन्दर दिल वाली दीदी ने मुझे माफ़ कर दिया है। लेकिन मुझे ये चिन्ता खाए जा रही है कि इस बात का क्या भरोसा है कि जिस आदमी ने एक बार यूं आपका हक आपसे छीना है, वह फिर ऐसा नहीं करेगा? क्यों मैं गलत हूं? मैं मर जाऊंगी लेकिन मेरी बहन यूं की यूं

लुटती रहेगी……।"

हां, मैं वैसी की वैसी लुटती रहूंगी। मेरी बोटी-बोटी को नोच-नोचकर यूं खाया जायेगा।

श्रौर मैं दिन-प्रतिदिन घुलती जा रही थी, घटती जा रही थी। पर मैं मरना नहीं चाह रही थी। कोई नैन थे जिनको अच्छा लगने के लिए अभी मैं ज़िन्दा रहना चाहती थी। अभी तो बार-बार डाक्टरों श्रौर दोस्तों के कहने पर जब फरहाद मुझे श्रीनगर ले चला तो मैंने इन्कार नहीं किया। कश्मीर मैं इससे पहले कभी नहीं गई थी। फरहाद भी नहीं गया था। कमलजीत को पीछे घर की हिफाज़त के लिए छोड़कर हम कश्मीर चले गये।

हम सीधे पहलगाम पहुंचे। नदी के किनारे एक श्रोर हमारे तम्बू लग गए। मैं सारा दिन बच्चों को साथ लेकर पानी के पास जा बैठती। फरहाद को आजकल ताश का चस्का पड़ गया था। आगे-पीछे श्रौर कई सैलानी ताश के शौकीन थे। सारा-सारा दिन उनकी चौकड़ी जमी रहती। कभी रमी, कभी ब्रिज। कभी फरहाद हार आता, कभी जीत आता।

विट्टी बड़ी हो रही थी। जब हंसती, मुझे लगता जैसे कमलजीत हंस रहा हो।

२१

फरहाद की छुट्टी के दिन खत्म हो रहे थे लेकिन कश्मीर की रौनक अभी पूरे जोबन पर थी। फैसला ये हुआ कि फरहाद वापस लाहौर लौट जाए श्रौर कमलजीत छुट्टी लेकर मेरे पास रहने के लिए आ जाए। मैं इस तजवीज़ के बारे में सोचती श्रौर गद्‌गद हो जाती। कमलजीत, कश्मीर, श्रौर मैं! मुझे अपने आपसे डर लगने लगता। मैं बार-बार फरहाद को कहती कि यदि उसे श्रौर छुट्टी न मिली तो मैं भी उसके साथ लौट जाऊंगी। उधर कमलजीत था, एक चिट्ठी उसको लिखी गई, कोई जवाब नहीं! एक श्रौर चिट्ठी इस तज-वीज के बारे में लिखी गई, कोई जवाब नहीं। थककर फरहाद ने

उसे तार दिया तो कहीं उसने छुट्टी के लिए अर्ज़ी दी। और जवाब में फिर भी हमें लिखा—"मेरी राय है आप लोग सब लौट आयें। लाहौर का मौसम आपके आने तक ठीक हो जायेगा।"

फरहाद के दिमाग़ में कोई बात आ जाए तो वो हमेशा उसके पीछे पड़ जाता। आखिर उसने लाहौर कमलजीत को टेलीफोन किया और उसे फौरन कश्मीर आने के लिए कहा। कमलजीत राज़ी हो गया। फरहाद के जाने का दिन आ गया लेकिन कमलजीत लाहौर से नहीं चला था।

हम गुलमर्ग से लौटकर श्रीनगर आ गये थे। नसीम बाग़ में हमने तम्बू लगाए, डल के किनारे तम्बुओं की एक बस्ती में रह रहे थे। हर रोज़ कमलजीत की प्रतीक्षा होती, लेकिन उसकी खबर नहीं थी। आखिर हारकर फरहाद चल दिया। उसकी छुट्टी खत्म हो गई थी।

पीछे मैं अकेली थी। मेरे साथ नौकर थे, आया थी और एक खानसामा।

एक दिन गुज़र गया, दो दिन गुज़र गए, तीन दिन गुज़र गए। सचमुच कमलजीत लाहौर से अभी चला नहीं था। फरहाद ने लाहौर पहुंचकर उसे गाड़ी में बिठाया।

मुझे सख्त गुस्सा आ रहा था। मैं अकेली कश्मीर में थी। मैंने फरहाद को तार दिया कि मैं लाहौर के लिए चल रही हूं। उसी शाम कमलजीत आ गया।

सांझ हो रही थी। ऊंचे-ऊंचे चिनारों की लम्बी परछाइयां अंधेरे की चादर में लिपटी जा रही थीं। दूर डल की छाती पर नाविकों के नग्मे हवा में तैरने लगे थे। आया की गोद में बिट्टो सो चुकी थी। बच्चू खाने के लिए कह रहा था। ऊंघ रही आंखें। खाता-खाता सो जायेगा। और फिर मैं अकेली रह जाऊंगी। बच्चों के सो जाने के बाद जब तक मुझे खुद नींद न आती, शाम का ये समा मुझे खाने को दौड़ता था। तेज़-तेज परेशान क़दम मैं अपने तम्बू के सामने टहल रही थी। सब तम्बुओं में बत्तियां जल रही थीं। आया भी अजीब थी। उधर से शाम होती इधर से ये हर

तम्बू की बत्ती जला देती। और तो और, कमलजीत के तम्बू की भी बत्ती जल रही थी। उसके आने की कोई खबर नहीं थी और इधर उसका तम्बू लग चुका था। उसमें फर्नीचर आ चुका था। और आया हर शाम उसमें बत्ती जला देती थी। मैंने सोचा आगे बढ़कर उस तम्बू की बत्ती बुझा दूं कि साथ के तम्बुओं में से आवाज़ आई—"आण्टी, आपको कोई पूछ रहा है।"

ये तो वही था।

मैं खिल-सी गई। जहां खड़ी थी वहीं के वहीं मेरे क़दम रुक गये। ये तो वही था। पीछे तांगे वाला उसका सूटकेस उठाए खड़ा था। मुझे समझ नहीं आ रही थी कमलजीत को मैं कैसे मिलूं, किस तरह उसकी आंखों में देखूं, और मैंने अपनी नज़रें नीचे कर लीं।

"भाभी जान, आदाब !"

और फिर कमलजीत आगे बढ़कर बच्चू को लाड़ करने लगा। बिट्टो के पलंग के पास खड़ा कभी उसे एक ओर से देख रहा था, कभी उसे दूसरी ओर से देख रहा था।

बार-बार कहता—"भाभी जान, मैं इसे उठा लूं ?"

लेकिन सोई हुई बच्ची को उठाने का उसे हौसला न पड़ता।

बच्चू के लिए ढेर-से खिलौने लाया, मिठाइयां लाया और फिर उसे लाहौर की कहानियां सुनाने लगा।

दीवाना !

मैंने कहा—"कमल, तुम नहाओगे नहीं ? सारे दिन का सफर, तुम थक गए होगे ?"

"कहां भाभी जान ! मैं तो कभी का पहुंचा हूं। बस आपको ढूंढने में देरी हो गई। ये तांगेवाला बड़ा बेईमान था। जान-बूझकर पता नहीं मुझे कहां-कहां लिए फिरा। जब सांझ हुई, उसका घोड़ा थका, तो सीधा मुझे ठिकाने पर आकर उतार गया।

और फिर कमलजीत ने हाथ-मुंह धोया, कपड़े बदले। मैंने उसका सामान उसके तम्बू में लगाया।

और मैं सोचने लगी—जब सारे उसके काम खत्म हो गए

फिर कमलजीत क्या करेगा ? फिर तो मेरी ग्रोर देखेगा । 'भाभी जान, ग्रापकी तबीयत तो ग्रब ठीक है ?' पूछेगा ग्रौर फिर मैं उसको क्या जवाब दूंगी ?

सारे गिले, सारी शिकायतें मैं भूल गई । मैंने उसे एक बार भी तो नहीं कहा कि वो इतने दिन टालता रहा था । मैंने उसकी इतनी प्रतीक्षा की । इतनी देर करके वो ग्राया था । एक दिन वो ग्रौर न ग्राता तो मैंने वापस जाने का फैसला कर लिया था ।

ग्रौर फिर मेरे पांव तले से जैसे ज़मीन निकल गई । खाने की मेज़ पर हम बैठे ग्रौर पहली बात कमलजीत ने मेरे साथ जो की, वो ये थी, हम कब लाहौर जा रहे हैं । "भाभी जान, लाहौर कोई इतना गर्म नहीं । ग्रौर फिर ग्रापको गर्मी से क्या ! सारा दिन ग्राप ग्रपने कमरे में रहेंगी । खस की टट्टियां लगवा लेंगे । बाहर खस, ग्रन्दर पंखा । सुबह गर्मी नहीं होती, शाम को गर्मी नहीं होती । दुपहर को गर्मी होती है, दुपहर को ग्रादमी बाहर न निकले । ग्राखिर वो लोग भी तो हैं जो गर्मी-सर्दी पेड़ के नीचे गुज़ार देते हैं । ग्रौर फिर इस साल तो लाहौर का टैम्परेचर कोई खास ऊपर नहीं गया । मुझे तो लाहौर बड़ा ग्रच्छा लगता है । लाहौर से बाहर रहना मेरे लिए मुसीबत हो जाती है । ग्रपना घर ग्रपना घर होता है । ग्रपने घर की ग्रसुविधा भी ग्राराम देती है । जितने दिन ग्राप लोग यहां थे, मुझे इस कदर बच्चे याद ग्राते थे । ग्रब फरहाद ग्रकेला है । उसे हम सब की याद सताती होगी । बेचारा उदास-उदास रहता होगा । दो-चार दिन के बाद हम लौट जाएंगे । कश्मीर मेरा देखा हुग्रा है । हम रावलपिंडी वाले किसी न किसी बहाने हर साल यहां हो जाते हैं । ग्रौर फिर गर्मी कश्मीर में भी तो होती है । ग्राजकल यहां ग्रच्छी-खासी गर्मी है···।"

कमलजीत बोलता जा रहा था, बोलता जा रहा था । मैं उसके मुंह की ग्रोर देख रही थी ।

मैं ग्रपलक कमलजीत की ग्रोर देख रही थी । कश्मीर का सौन्दय जो मुझपर इस तरह जादू किए हुए था मुझे लगा जैसे वो सारे का सारा कमलजीत की मुट्ठी में हो । उसके होंठों पर हो ।

उसके नयनों में हो।

दीवाना !

२२

ये तय पाया कि अगली सुबह हम चश्माशाही चलेंगे।

कई शिकारे थे। कश्मीर में हर शिकारे का कोई-न-कोई नाम होता है, और शिकारे की छत पर सामने तख्ती पर लिखा रहता है। डल के इस किनारे जो शिकारे खड़े थे उनमें 'कमल' नाम का एक शिकारा था। मैं हमेशा इस शिकारे को चुना करती थी। पहली वार जब हम शिकारे में बैठे, फरहाद ने बच्चू को कहा—'कमल चाचा नहीं तो कमल नाम का शिकारा ही सही।' उन दिनों हमने कमलजीत को कश्मीर आने के लिए चिट्ठी लिखी थी और उसके जवाब की इन्तजार थी।

मैं हमेशा की तरह कमल नाम के शिकारे की ओर जा रही थी। शिकारे वालों को भी पता था कि मैं वही शिकारा पसन्द करती हूं। लेकिन कमलजीत ने 'शबनम' नाम का शिकारा चुना और जब हम शिकारे में बैठकर चले, मैंने कमलजीत से पूछा—"कमल, तुमने इस शिकारे को क्यों चुना है ?"

"जिस लिए आप कमल नाम के शिकारे को पसन्द करती हैं।"

और मेरा मुंह फक हो गया। ये मैं क्या सुन रही थी ?

"बहुत देर नहीं हुई," कमलजीत ने मुझे फिर बताया—"बहुत देर नहीं हुई मैंने एक नोवल पढ़ा था जिसमें शबनम नाम की एक लड़की अपने सत्य और अपने धर्म के लिए जान पर खेल जाती है; दुनिया का कोई लालच उसको सच्चाई से भटका नहीं सकता।"

और मेरी जान में जान आई।

"भाभी जान, बिट्टो का नाम शबनम क्यों न रख दें !" कमलजीत बिट्टो को गोद में लिए उससे खेल रहा था। सुबह से वो उसे उठाये हुए था।

"बेटी तुम्हारी है। हम कौन होते हैं इसमें दखल देने वाले !"

मैंने हंसकर कहा।

"पर अभी तो हमने इसके भाई के नाम का फैसला नहीं किया।"

"नहीं, बच्चू का नाम 'सुहेल' उसने सोचा है।"

कमलजीत को ये नाम पसन्द था। जिस दिन बच्चू का नाम मैंने और फरहाद ने तय किया, बिट्टो के नाम भी कई तजवीज़ हुए, लेकिन मैंने जान-बूझकर किसीके लिए हामी नहीं भरी।

डल के उस पार के किनारे पर जब हम पहुंचे तो धूप वैसी की वैसी थी। आया शबनम को उठाये हुए थी, सुहेल अपने कमल चाचा की उंगली पकड़े हुए था और मैं धूप से बचने के लिए अपनी चुनरी के साथ सर को लपेटकर चल रही थी। चश्माशाही झील के किनारे से काफी दूरी पर है। बेअन्त भीड़ थी। चींटियों की तरह लोग चश्मे की ओर जा रहे थे, चश्मे से लौटकर आ रहे थे।

एक धूप, दूसरा कच्चा रास्ता, तीसरी चढ़ाई। मैं गर्मी में, पसीने में बेहाल हो रही थी। हर पेड़ के नीचे मैं सुस्ताने के लिए खड़ी हो जाती। इस सड़क पर घने दरख्त भी तो कोई अधिक नहीं थे।

"हाय भाभी जान, आप तो लाल-सूर्ख हो रही हैं," कमल ने मेरी ओर देखते हुए कहा।

धूप का काला चश्मा, पहने सिर पर चुनरी लिए मैं अत्यन्त सुन्दर लग रही थी। कमलजीत की आवाज़ से मैंने यह पहचाना। जब मैं उसको बहुत प्यारी लगती उसकी आवाज़ में एक तरह की कम्पन-सी आ जाया करती। एक तरह का मीठा शहद जैसे कोई होंठों से लगा दे।

हम चले जा रहे थे। कुछ दूर आगे जाकर एक औरत आई और अचानक उसने कमलजीत को कन्धे से पकड़ लिया।

"क्या हाल है सरदार साहब, आप तो पहचानते भी नहीं!"

कमल घबरा गया।

"क्यों, ये बच्चे अपने ही हैं?"

"हां," कमल ने घबराकर जवाब दिया।

"बड़ी जल्दी बच्चे भी पैदा कर लिये।"

"नहीं, नहीं, मेरे दोस्त के बच्चे हैं। आप मेरी भाभी जान

हैं।" कमल ने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा। मैं कोई दस कदमों की दूरी पर एक पेड़ के नीचे खड़ी सुस्ता रही थी।

"बच्चू, भाभी तो वाह-वाह चुनके बनाई है।" एक बिगड़ी हुई अमीर पंजाबिन के लापरवाह ढंग में उसने कमल को कहा और आंखों ही आंखों से उसे छेड़कर आगे चल दी।

उस गरमी में लिपस्टिक, पाउडर, ढेर सारे गहने, भड़कीले रंग के रेशमी कपड़े, पांच बेटे-बेटियां, आगे नौकर, पीछे नौकर, कमलजीत को हक्का-बक्का छोड़कर वह चली गई।

"कौन थी ?" मैंने कमलजीत से पूछा—"कोई पुरानी मंज़ूरे-नज़र जान पड़ती है।"

"नहीं-नहीं, भाभी जान, ये तो···" कमलजीत हमेशा इस तरह के मज़ाक पर शरमा जाया करता था।

और फिर कमलजीत ने मुझे उस औरत की कहानी सुनाई।

"ये औरत एक ठेकेदार की पत्नी है। बहुत अमीर है। जब मैं एम० ए० में पढ़ता था तो मैं इनके पड़ोस में रहता था।"

और फिर चश्माशाही तक सारे रास्ते मैं कमलजीत को छेड़ती रही।

कभी मैं उसके कन्धे के पास खड़ी होकर कहती—"हाय ! इस कन्धे में से कितनी सुगन्ध आ रही है !" उस कन्धे से उस औरत ने उसे आकर पकड़ा था।

यूं हंसते-हंसते हम चश्माशाही पहुंचे। चश्मे के किनारे बैठे हम हाथों से पानी पीरहे थे कि एक नौकर आया और कमलजीत को चांदी का एक गिलास देने लगा, "बीबी जी ने दिया है।" हम गिलास लाना भूल गए थे और हमें हाथों से यूं पानी पीता देखकर उस ठेके-दारिन ने अपने नौकर के हाथ गिलास भेजा था। कमलजीत गिलास को हाथ नहीं लगा रहा था। मैंने आगे बढ़कर गिलास ले लिया। बच्चों को पानी पिलाया, खुद पीया, कमलजीत को पिलाया। प्यास बुझाकर हम चश्मे के नीचे पानी से खेलने लगे। चश्माशाही का पानी पीकर कहते हैं पत्थर भी हज़म हो जाते हैं। हम सबको भूख लग आई। और उस भीड़ में हम ढूढ़-ढूढ़कर

थक गये, न वो ठेकेदारिन कहीं थी, न उसका नौकर मिला।

सामने होटल में खाना खाकर हम फिर ढूंढ़ने लगे। सांझ हो गई लेकिन वो चांदी के गिलास वाली हमें नहीं मिली। हारकर हम वापस चल दिए। रास्ते में चांदी का गिलास कमलजीत का मज़ाक बना रहा।

२३

चश्माशाही से लौटते रात हो गई।

सारा दिन ऊधम मचाते रहे बच्चे शिकारे में बैठते ही ऊंघने लगे। कमलजीत कुछ देर से चुप-चुप-सा था। मेरा बार-बार चांदी के गिलास वाली की याद दिलाना शायद उसे पसंद नहीं था। लेकिन मुझे तो कमलजीत को छेड़ना हमेशा अच्छा लगता और फिर ये किस्सा तो ऐसा था कि जब भी मैं इसके बारे में सोचती, मेरे जैसे गुदगुदी होने लगती।

कुछ देर से शिकारे में बिलकुल चुप थी। केवल पानी के छलकने की आवाज़ और कुछ भी नहीं।

और फिर मुझे महसूस हुआ—आज तो शायद पूरे चांद की रात है। हां, वह पूरे चांद की रात थी।

उधर से चांद निकला, इधर जैसे खिलखिलाकर हंसने लगा हो। चांद की रश्मियां लच्छों के लच्छे मेरे साथ आकर जैसे किलोलें करने लगीं। चांद की चांदनी मुझपर हमेशा जादू का-सा असर रखती है। मेरी पलकों में जैसे सपने पिरोए गए हों।

"कमल, आज पूरे चांद की रात है।" मैंने आकाश में चांद की ओर देखते हुए कहा।

"हां, भाभी जान!" कमलजीत झील में उतर आए चांद की ओर देख रहा था।

हम फिर खामोश हो गए। बच्चे सो चुके थे। गद्दियों के उस ओर पर्दे के पीछे आया सो चुकी थी। उसकी सांसों की आवाज़ आ रही थी। शिकारे वाले कोई कश्मीरी गीत गा रहे थे। कभी

गाने लगते, कभी चुप हो जाते। कोई जल्दी नहीं थी। शिकारा अपनी मधुर चाल चला जा रहा था।

"चांदी का गिलास तो गिलास वाली को लौटाना होगा। हम किसीका गिलास क्यों रखें? कल मैं तुम्हें उसको ढूंढ़ने भेजूंगी।" मैंने कमलजीत को फिर छेड़ा। मेरी आंखों में, मेरे होंठों पर शरारत थी।

कमलजीत चुप था।

"कमलजीत, तुम बोलते क्यों नहीं? गिलास तुम्हें वापस नहीं करना?" मैं अपनी छेड़ पर बज़िद थी।

कमलजीत वैसे का वैसा खामोश था। बिट-बिट मेरी ओर देख रहा था। "चांदी का गिलास तुम निशानी रखोगे किसीकी अपने पास?" मैं मुस्करा रही थी।

कमलजीत अब भी चुप था। वैसे का वैसा उदास, जैसे किसी गहरी सोच में डूब गया हो।

शिकारा अब कमल के फूलों के एक किते से गुज़र रहा था। जहां तक नज़र जाती, कमल के फूल खिले हुए थे। कुछ उनके प्यारे रंग, कुछ उनपर छन रही चांदनी, कमल के पत्तों पर पानी के कतरे मोतियों की तरह दमक रहे थे। गोल-गोल हरी-हरी तश्तरियों में मोतियों के ढेर लगे हुए थे। जैसे हुस्न अपने दाम अंकवा रहा हो। मेरा जी चाहता शिकारा एक घड़ी की घड़ी के लिए वहां रुक जाय। लेकिन शिकारा तो फिसलता हुआ चला जा रहा था। और कमल यूं उदास-उदास आंखें बैठा हुआ था, कोई किसको कहे शिकारा कुछ देर के लिए रोक लिया जाय।

और फिर मुझे वह चांदनी रात याद आने लगी जिस रात मैंने कमल को पहली बार देखा था और मेरी पलकें एक उन्माद में मुंद गयीं।

शिकारा अब हवा के रुख पर था और शिकारे वालों ने चप्पू चलाने बन्द कर दिए थे। यूं लगता था जैसे वह बीड़ी पी रहे हों। और फिर उन्होंने बातें करनी शुरू कर दीं।

"सवारियां सो गयी हैं शायद।"

"हां, उनकी नौकरानी तो कब की सोई पड़ी है।"

"अल्ला राजी रखें, जोड़ा बहुत खूबसूरत है।"

"सच्चे मोती जैसे हों।"

मैंने भी सुना, कमलजीत ने भी सुना, किन्तु हम यूं खामोश रहे, जैसे हमने कुछ भी न सुना हो। फिर कमलजीत एक बनावटी-सी खांसी खांसने लगा ताकि शिकारे वाले कहीं कुछ और न बक दें।

चप्पू चलने फिर शुरू हो गए थे। शिकारे वाले अब फिर गा रहे थे। हव्वा खातून का गीत था, जिसके प्रियतम को मगल पकड़कर ले गए थे और पीछे उसकी याद में गाती हव्वा ने जाने दे दी थी।

कितनी देर शिकारे वाले गाते रहे, एक मधुर लय, एक मीठा गीत।

"कमल, आज रात कितनी प्यारी है!" मैंने कमलजीत की उदास-उदास आंखों में देखते हुए कहा।

"भाभी जान! आज की रात बड़ी प्यारी है।" कमलजीत मेरे बालों, मेरी पलकों, मेरे गालों, मेरे होंठों, मेरे कन्धों पर पड़ रही चांदनी को देख रहा था।

और फिर हम खामोश हो गए।

चांद की चांदनी सारी की सारी जैसे डल में उतर आई थी और उसके स्वागत के लिए भील उमड़कर उसे अपने बाहुपाश में ले रही थी। भरपूर चांद की चांदनी, मेरी पलकें भारी-भारी हो रही थीं। डल का मोतियों जैसा साफ पानी और उसपर तैर रही चांदनी, ऐसे लगता जैसे झाग की एक तह-सी जम गयी हो।

कुछ देर शिकारे ने कुछ इस तरह रुख बदला कि कमलजीत की परछाईं मेरे कदमों में पड़ने लगी। मैं बार-बार इधर-उधर होती, परछाईं फिर जैसे मेरे पांव पर आन पड़ती। मैंने उठकर अपनी जगह बदल ली। पर परछाईं फिर चलती-चलती मेरी शलवार तक आ पहुंची। मैंने अपने पांवों को छिपाने के लिए आलती-पालती मार ली। कुछ देर बाद मैंने देखा, कमलजीत की

परछाईं मेरे घुटनों पर पड़ रही थी। अपनी उलझन को छिपाने के लिए मैंने तेज़-तेज़ सलाइयों से स्वेटर बुनना शुरू कर दिया। परछाईं होले-होले सरकती मेरे कन्धों पर, मेरी गर्दन पर, मेरी ठोढ़ी पर, मेरे होंठों पर, मेरे गालों पर, मेरी पलकों पर, मेरे माथे पर, मेरे बालों तक पहुंच गयी। अलसाई-अलसाई मेरी पलकें कब की जुड़ चुकी थीं।

"कमलजीत !" मैं एकदम चीख उठी।

"क्यों भाभी जान !" कमलजीत घबड़ाकर मेरे हाथों से गिरी सलाइयां और स्वेटर को संभालने लगा।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं। मैं बैठी-बैठी शायद सो गयी थी।" मैं बिट-बिट कमलजीत की ओर देख रही थी। जैसे कोई किसीको पहचान रहा हो।

"क्या हुआ था भाभी जान ?"

"कुछ नहीं कमल," अब मैं मुस्करा रही थी। "बैठी-बैठी शायद मैं सो गयी और सोये-सोये शायद मैंने कोई सपना देखा।"

और कमलजीत भी मुस्कराने लगा।

शिकारे वाले फिर गा रहे थे, लम्बी तान, मीठा गीत।

एक गीत खतम हुआ, वह एक और गीत गाने लगे।

हवा हल्की-सी तेज़ हो गयी थी, इत्ती तेज़ कि बीच-बीच में शिकारे के रंगीन पर्दे झूलने लगते। सामने का एक पर्दा झूलता-झूलता कभी कमल के मुंह को जा छूता, झूलता-झूलता कभी मेरे गालों पे आ लगता। एक बार, दो बार, जब तीसरी बार यूं हुआ तो मैं खिलखिलाकर हंस दी। कमलजीत को कुछ समझ नहीं आ रही थी। मासूम बच्चों की तरह अनजान !

हवा तेज़ हो गयी थी। डल की लहरें तेज़ करवटें ले रही थीं। इस तरह बेताब लहरों पर चांद की चांदनी जैसे हंस रही हो, लोट-पोट हो रही हो। मैं कितनी देर से देख रही थी, पानी की लहरें जैसे मोतिए की चादरें पिरोये हमारी ओर बढ़ती आतीं, शिकारे के चप्पू हर बार उनको लौटा-लौटा देते। तो भी ये लहरें हार नहीं मान रही थीं। वैसी की वैसी मुसकानें बिखेरती फिर चल

देती। चप्पू फिर उन्हें पीछे को ढकेल देते। अजीव खेल खेला जा रहा था। कोई किसीपर हंस-हंसकर अपने आपको न्योछावर कर रहा था। कोई किसीकी मुस्कानों से अनजान अपनी राह चला जा रहा था।

अचानक हमारा शिकारा एक और शिकारे के पास से गुजरा। उस शिकारे में कोई अंग्रेज़ जोड़ा था। मैंने भी देखा, कमलजीत ने भी देखा, और हमारी आंखें मुंद गईं। और फिर हम दोनों ने एक-दूसरे को ऐसे झुठलाया जैसे हमने कुछ देखा ही नहीं था। एक-दूसरे के होंठों पर होंठ जमाये एक अकह वेग में वह प्यार कर रहे थे। फिरंगन के घुंघराले वाल उसके महबूब के मुंह पर पड़ रहे थे। मर्द की बांह लड़की की गर्दन के गिर्द लिपटी हुई थी।

शिकारे वालों ने गाना वन्द कर दिया था। इस खामोशी में और भी मुश्किल हो गया मुझसे अपने आपको छिपाकर रखना। और मैं बेचैन होने लगी। ये शिकारे वाले इतनी देर क्या कर रहे थे? कव के हम चले हुए थे!

और फिर एक शिकारे वाला हल्की-सी खांसी के वाद हमसे पूछने लगा—"साहव, चार चिनारी चलेंगे?"

"हां।" कमल के मुंह से निकला और फिर जैसे सहसा उसने कुछ सोचा और कहने लगा, "नहीं भई, नहीं, देर वहुत हो गयी है।"

"क्यों कमल, हां चलते हैं।" मैंने राय दी।

"काहे को? वच्चे सो चुके हैं।" कमलजीत की मर्ज़ी नहीं थी।

"नहीं, चलेंगे।" मैंने शिकारे वाले को चार चिनारी रुकने के लिये कहा। रास्ते में ही तो वह जगह थी।

"पूरे चांद की रात चार चिनारी तो लोग दूर-दूर से आते हैं।" शिकारे वाला सिफारिश कर रहा था।

सामने चार चिनारी के वृक्षों की परछाइयां लम्वी-लम्वी वांहें जैसी हमें वुला रही थीं। चार चिनार उसके वीच घास का लान। घास पर केवल एक ही एक वेंच, जिसपर दो कोई वैठे और तीसरे के लिये जगह नहीं वचती थी। मैं सोचती, शायद कमलजीत ठीक ही कहता था। रात वहुत हो गई थी और हमें लौटकर घर भी

पहुंचना था। खानसामा ने पता नहीं खाना भी तैयार किया होगा कि नहीं। सुबह मैं उसे कहना भूल गयी थी कि हमारा इन्तजार न करे। लेकिन तब थोड़ा पता था कि हमें इतनी देर हो जायेगी। इतनी देर हम चांदी के गिलास वाली को ढूंढ़ते रहेंगे।

और फिर मुझे लगा कि जब हम चार चिनारी पहुंचेंगे, सामने टापू पर खड़ी वह हंस रही होगी। 'मुझे पता था, आज की रात तुम यहां ज़रूर आओगे।' जैसे वह कह रही हो, 'मुझे पता था, आज की रात तुम लोग जरूर यहां आओगे और मैंने सोचा मैं अपना चांदी का गिलास तुमसे यहीं ले लूंगी।'

और मैंने फैसला किया, हम चार चिनारी नहीं जायेंगे।

"कमल, हम चार चिनारी नहीं जायेंगे।" मैंने कमलजीत को कहा।

"हां भाभी जान!" उसने झट जवाब दिया जैसे किसीके मन की मुराद पूरी हो गई हो।

पर कमल क्यों चार चिनारी जाने से कतरा रहा था? मेरे दिल ने जैसे बगावत की और मुझे जिद आ गई। मैं तो आज की रात ज़रूर चार चिनारी जाऊंगी।

"नहीं कमल, चार चिनारी हम जायेंगे।"

कमलजीत जानता था कि मेरे मन में कोई बात आ जाए उससे मुझे रोक सकना आसान नहीं होता था। वह चुप था। शिकारा अपनी चाल तिरता हुआ चला जा रहा था।

ज्यों-ज्यों रात गुज़रती, चांद की चांदनी जैसे मचल-मचल पड़ रही हो। यूं लगता जैसे कोई आकर मुझे लिपट-लिपट जा रहा हो। मैं परवाह न करती और वह मुझे गुदगुदियां करने लगता। मैं फिर भी ध्यान न देती और वह मेरे गालों पर, मेरे होंठों पर, मेरी पलकों पर, आ-आकर नाचने लगता। एक नशा-नशा, एक मस्ती-मस्ती आसपास में बिखरती जा रही थी और सामने कमल शान्त, अडिग बैठा था। चांद की चांदनी का जादू ज्यों-ज्यों फैलता वह त्यों-त्यों उदास-उदास, खोया-खोया-सा लग रहा था। जैसे कोई अथाह गहराइयों में डूबता जा रहा हो।

शिकारा चार चिनारी के टापू पर जा लगा था और मैं एक उन्माद में कूदकर सामने किनारे की घास पर जा खड़ी हुई। कमल वैसे का वैसा अपनी जगह पर बैठा हुआ था।

"आप हो आएं, मेरी ये जगह देखी हुई है।" जब मैंने उसके नयनों में देखा, कमल के मुंह से ये शब्द सुनकर मुझे एक अकह धक्का लगा। मुझपर जैसे किसीने सात घड़े पानी उंड़ेल दिया हो, मेरी आंखों में आंसू डबडबा आए। टूटे-टूटे कदम मैं चार चिनारी के दरम्यान रखे बेंच पर जा बैठी। सामने आकाश में चांद खिलखिलाकर हंस रहा था। मैं बेंच पर बैठी और छल-छल मेरे आंसू बहने लगे।

चार चिनारी के उस बेंच पर, जहां लोगों ने अपनी उस सुन्दर रात की याद पेड़ों के तनों पर खोद-खोदकर निशान छोड़े हुए थे, मैं लहू के आंसू रो-रोकर ठंडी हल्की होकर शिकारे की ओर लौट आई। कमलजीत को झुठलाने के लिए मैं दूर से ही मुस्कराने लगी, "मुझे पता है कमल, तुम क्यों नहीं आए।" मैंने बात को टालना चाहा, "तुम बच्चों को शिकारे में अकेला नहीं छोड़ना चाहते थे।"

"हां भाभी जान!" कमलजीत ने मेरी हां में हां मिलाई।

इस तरह मैंने कमलजीत को धोखा दिया, कमलजीत ने जैसे मुझे धोखा देने की कोशिश की।

२४

श्रीनगर का चप्पा-चप्पा कमलजीत ने मुझे दिखाया। शिकारे, टैक्सियों और घोड़ों पर हमने कश्मीर की सैर की, खास तौर पर घोड़ों पर सैर करना मुझे बहुत पसन्द था।

शालामार और निशात की सैर को हम कई बार गए। मुझे लगता जैसे हर दिन मेरे अन्दर एक नया रंग भर रहा है। मैं लाल-सुर्ख हो रही थी। हर खूबसूरत कली जब कमलजीत देखता उसकी मर्जी होती, मैं अपने बालों में लटका लूं। सारे दिन मैं पहले

लगाए फूल को निकालती रहती और कमलजीत की नई चुनी कलियों को अपने बालों में सजाती रहती, एक के बाद एक।

उस रोज़ शायद वो छठा फूल था जो कमल ने मुझे पेश किया।

"कमल······" फूल को कमलजीत से लेकर बालों में लगा रही मैंने कुछ कहना चाहा, लेकिन फिर रुक गई।

कमलजीत मेरी अनकही बात को समूचा समझ गया और नज़रों ही नज़रों में उसने जवाब दिया—'हां भाभी जान, मुझे यूं नहीं करना चाहिए।'

और उसके बाद जो फूल उसने तोड़ा कितनी देर उसे अपनी उंगलियों में पकड़े वो उससे खेलता रहा। आखिर उससे वो फूल मैंने मांग लिया और कमलजीत की आंखों में अश्रु छलछला आए।

दीवाना! किस औरत को ये अच्छा नहीं लगता कि कोई उसे आकर फूल पेश करे? औरत तो मर सकती है अगर उसे यकीन हो जाए कि उसके चाहने वाले उसे फूलों में दबाएंगे।

उस शाम वन्द पर सैर करके लौटते एक बार फिर कमल रुआंसा-सा हो गया। बात यूं हुई, कमलजीत ने कार्डराय की पतलून पहनी हुई थी। ऊंचे-ऊंचे चिनारों से घिरी सुनसान सड़क पर चल रहे एकदम मुझे महसूस हुआ कि जब कमल चलता था उसकी पतलून में से 'शिस्सू', 'शिस्सू' की आवाज़ आती थी। मैंने कमलजीत को इसके बारे में बताया, लेकिन उसे ये आवाज़ नहीं सुनाई दी। एक आवाज़ जो उसकी चाल का हिस्सा बन चुकी थी, उसे कैसे सुनाई देती? और एक बार जो मैं उस आवाज़ से चैतन्य हो गई, वो आवाज़ जैसे और ऊंची हो गई हो। हर कदम जो कमलजीत उठाता वो आवाज़ और ऊंची होती जाती और मैं बार-बार कमलजीत को वो आवाज़ सुनवाने की कोशिश करती। लेकिन उसे तो कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। और अब 'शिस्सू', 'शिस्सू' पर मुझे तो जैसे गुदगुदी होने लगी। चनार बाग तक बाकी एक फर्लांग का फासला था। ये फासला हमसे चलना मुश्किल हो गया। मेरी इस उलझन को देखकर कमलजीत एक पेड़ के नीचे रुक गया। मैं उसके बिना अकेली कैसे चलती? ना मैं अकेली चल सकती

थी, ना ही उसके साथ चल सकती थी। अजीब मुसीबत थी। और कमलजीत की पलकें अब जैसे भीगीं-भीगीं।

ये तो शायद अल्ला ने हमारी सुनी कि आया वच्चों को लिए उसी सड़क पर सैर करती हुई हमें मिल गई और फिर हम हंसते-खेलते चनार वाग पहुंच गए। कमलजीत की गोद में शवनम हो तो उसे सब कुछ भूल जाता।

चनार वाग आकर मैं घर के काम में लग गई। कमलजीत सामने नहर के किनारे घास के मैदान पर टहल रहा था। डल की सैर के लिए सारे शिकारे चनार वाग से होकर जाते हैं। यहां हमेशा रौनक रहती है। जैसे कोई सड़क सवारियों से भरी हो। हर रंग के लोग हर रंग के शिकारों में बैठे आ-जा रहे होते। रसोई के तम्बू में कमलजीत की मनपसन्द दोप्याज़ा मांस मैं अपने सामने पकवा रही थी। वार-वार मेरा दिल लाड़ में कहता—'आज कमल उदास है।' और मैं उसे अपने ध्यान टहल रहा देख लेती।

हल्का-हल्का अंधेरा हो रहा था। सामने नहर में शिकारों का आना-जाना कम हो गया था। कमलजीत अभी भी टहल रहा था। कुछ देर वाद मैंने देखा एक चनार के तने के साथ लगा वो एकटक सामने आ रहे एक शिकारे की ओर ताक रहा था। शिकारे में एक लड़की थी। अकेली। शिकारे की लड़की जैसे कमलजीत को पहचान रही हो। और फिर शिकारा नज़दीक आ गया और दोनों ने एक-दूसरे की ओर हाथ वढ़ाया। कमलजीत तेज़-तेज़ नहर की ओर गया। उस लड़की का शिकारा भी इस ओर घूम आया। मेरे हाथ का काम हाथ में ही रह गया और मैंने देखा शिकारे से उतरकर वो लड़की कमलजीत की ओर लपक रही थी। ये तो मरी वाली वही लड़की थी। हां, वही। ये यहां किधर और कमलजीत को ये कैसे जानती थी? कमलजीत शर्माया-शर्माया, घवराया-घवराया उसे दूर-दूर रखने की कोशिश कर रहा था। लेकिन वो लड़की दीवानों की तरह वार-वार उसके गले लग रही थी। कभी उसके हाथों को पकड़कर चूमने लगती, कभी उसके कन्धों को पकड़कर उन्हें प्यार करने लगती। वही थी। ऊंची,

लम्बी, गन्दमी रंग, ठोड़ी पर तिल। ग्रौर मेरे पांव के तले से ज़मीन निकल गई। कमलजीत उसे कैसे जानता था ? दुनिया कितनी छोटी है ? ये मैं क्या ग्रपनी ग्रांखों से देख रही थी ?

कमलजीत जैसे उसे बार-बार एक सत्कार योग्य दूरी पर रख रहा हो ग्रौर लड़की बार-बार लपककर उसके गले लिपट रही थी। ग्रौर फिर पता नहीं कमलजीत ने उसे क्या कहा, लड़की एकदम ग्राग-बबूला हो गई, ग्रौर पागलों की तरह उसने कमलजीत को एक चपत इधर, एक चपत उधर दे मारी। ग्रौर फिर शिकारे में बैठ उसकी ग्रोर पीठ किए चल दी।

कमलजीत वैसे का वैसा खड़ा रहा हक्का-बक्का। टप-टप उसकी ग्रांखों से ग्रांसू टपक रहे थे। ग्रब ग्रंधेरा ग्रौर ज़्यादा हो गया था। मैं हौले-हौले कमलजीत के पास गई, ग्रौर उसे बांह से पकड़ तम्बू में ले ग्राई।

उस रोज़ सोने के लिए लेटा, जब मैं उसके तम्बू में हर रोज़ की तरह बैठी स्वेटर बुन रही थी, कमलजीत मुझे उस लड़की की कहानी कहने लगा—

"भाभी जान! ये लड़की बड़ी बदनसीब है। इसका नाम मालती है। हमारे साथ कालेज में पढ़ती थी। बदकिस्मत भी है, बदतमीज़ भी है। जिस साल मैं कालेज में दाखिल हुग्रा उसी साल उस कालिज में लड़कियों को भी दाखिल किया जाने लगा। तीन-चार सौ लड़कों में तीन-चार लड़कियां! पोठोहारी लड़कों की भूखी ग्रांखें, लड़कियों को वो नजरों ही नजरों से नोच-नोचकर खाते रहते। ये लड़कियां बेचारी क्लास में से निकलतीं ग्रौर सीधी रिटायरिंग रूम में जा घुसतीं। एक मुसीबत थी। जिधर कोई लड़की दिखाई देती, लड़कों की नजरें उधर ही घूम जातीं। हर समय दबी-दबी, हर समय घुटी-घुटी। ये लड़कियां बहुत तंग थीं। कालेज का वातावरण सारा का सारा ग्रसाधारण बन गया था। मालती उन सब लड़कियों में ज़्यादा चंचल थी। पढ़ने में भी होशियार ग्रौर सुन्दर भी सबसे ज़्यादा। किसी बड़े व्यापारी की बेटी है। एक दिन हम कालेज में बैठे थे। प्रोफेसर ग्रभी तक नहीं ग्राया था। ग्रौर लड़के ग्रगली बेंच पर बैठी

लड़कियों पर चोटें कर रहे थे। बात एक-दूसरे से करते लेकिन इशारा किसी लड़की की ओर होता। मेरी आदत थी, मैं लड़कों की इन हरकतों में साथ न देता। हमेशा की तरह मैं अपनी किताब पढ़ रहा था कि किसीने पीछे से मुझे एक रेवड़ी दे मारी। मुझे ये अच्छा नहीं लगा। "ये रेवड़ी किसने फेंकी है?" मैंने खफ़ा होकर पीछे की ओर देखा। इतने में मेरे आगे कुर्सी पर बैठी ये लड़की उठी और इसने तड़ाक-तड़ाक मेरे मुंह पर दो चपतें कस दीं। सारी क्लास में सन्नाटा छा गया। चांटे मारकर इसने मेरे मुंह की ओर देखा और इसकी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई। और फिर ये अपनी कुर्सी पर ढेरी हो गई। मुझे बाद में पता लगा कि कुछ लड़कों ने इसका नाम रेवड़ी रक्खा हुआ था और इस नाम से अक्सर इसे छेड़ते थे। लेकिन मुझको तो ये बिल्कुल पता नहीं था। और चांटे मारकर हटी इसे भी ख्याल आया ये गलती कर बैठी थी। फिर इसने मुझसे माफी मांगने के लिए चिट्ठी लिखी। मैंने कोई जवाब नहीं दिया। फिर एक दिन ये मुझे कालेज के बाहर मिल गई और बार-बार मुझसे माफी मांगती रही। इसमें माफी मांगने की कौन-सी बात थी! आखिर गलतफहमी हो ही जाती है। फिर मुझे महसूस हुआ शायद इसे मुझसे माफी मांगना अच्छा लगा था। इस तरह हमारी दोस्ती हो गई। मुझे ये लड़की अच्छी लगने लगी। ये भी मुझे अथाह प्यार करती थी। कालेज में, गली-मुहल्ले में हमारी मुहब्बत की कहानियां चल निकलीं। हम खुश थे। हमारे माता-पिता खुश थे। बाकायदा ढोल-ढमाके के साथ हमारी मंगनी हुई। शादी पढ़ाई के बाद तय पाई। हमने अपनी पढ़ाई खत्म की। इसे मुझसे पहले नौकरी मिल गई। नौकरी मिली और ये लाहौर चली आई। वहां इसकी और की और कहानियां सुनाई देने लगीं। सिग्रेट पीना, शराब से कोई परहेज न करना, सारी-सारी रात नाचते रहना। मैं तो इसे देख-रेखकर हैरान होता रहता। नई दोस्तियां, नए-नए साथी इसने बना लिए। मुझसे ये सब कुछ नहीं देखा गया और एक दिन शाम मैं वापस रावलपिंडी लौट गया।

अब इसे और खुल मिल गई और कहते हैं कि ये एक गुंडे के हाथ........."

"कमल !" मैंने चिल्लाकर उसे रोक दिया। छल-छल मेरी आंखों में से आंसू बह रहे थे। कमलजीत देखकर हक्का-बक्का रह गया।

२५

अगली सुबह कमल बड़ा उदास था। धूप निकल आई थी तो भी वो बिस्तर से नहीं उठा था। मैं उसके तम्बू में गई। मुझे देखकर उसकी आंखें डबडबा आईं। यूं लगता जैसे वो रात-भर रोता रहा हो।

मुझे कमलजीत पर बड़ा लाड़ आया। मैं उसके पलंग के पास कुर्सी पर बैठ गई। बार-बार कहता—"देखो, इस लड़की ने क्याअपना हाल कर रखा है!—ये तो नहीं बचेगी। अब ये नहीं बचेगी।"

मैं चुप बिट-बिट उसकी ओर देख रही थी।

"भाभी जान, मुझे वो कहने लगी—तुम चलकर मुझसे फेरे ले लो। मैं तुम्हारी मंगेतर हूं।"

"दीवानी हो गई है।"

कमलजीत को यूं छल-छल आंसू रो रहा देखकर मेरे खुद के अश्रु बहने लगे।

"ये तीसरी बार इसने मुझे चांटे मारे हैं। एक बार कालेज में, दूसरी बार लाहौर में। उस शाम ये शराब पीकर कहीं से आई थी। साफ इसके मुंह से शराब की बू आ रही थी और ये कहे—मैंने शराब नहीं पी, शराब पीकर कोई मेरे होंठों को चूमता रहा है। उस शाम मैं लाहौर छोड़कर चला गया।"

जैसे कमलजीत रो रहा था, मुझे महसूस हुआ उसके दिल में कितनी मुहब्बत थी उस लड़की के लिए!

"सात वर्षों के हमारे प्रेम को इस पगली ने एक आंख झपकने

में झटक दिया।" कमल बेहाल हो रहा था।

मुझसे अब और न देखा गया और मैं उसके तम्बू के बाहर चिनारों के नीचे टहलने लगी।

अब मुझे पता लगा कमलजीत के साथ मेरा क्या रिश्ता था। कितने दिनों से मैं हैरान हो रही थी, वो कैसे मेरी ज़िन्दगी में आ गया था। अब मुझे पता लगा कि हम तो एक ही तीर के शिकार हैं। अजीब रिश्ता क़ुदरत ने हमारा बनाया था।

और मैंने फ़ैसला किया कि मैं कमलजीत को वो सब कुछ जो मुझे इस लड़की ने मरी में बताया था कभी नहीं कहूंगी।

मैं तो हैरान हो रही थी। मरी में कमलजीत इसे कैसे नज़र नहीं आया! शायद उन दिनों वो बीमार ज़्यादा थी। कह जो रही थी—आज मैं कितने दिनों बाद पलंग से उठी हूं। डाक्टरों ने मेरा पलंग से हिलना बन्द किया हुआ है।

मुझे उदास देखकर कमलजीत सारा अपना गम भूल गया। और हंस-हंसकर मेरा मन परचाने लगा। हमने फ़ैसला किया कि उस दिन हम पिकनिक के लिए कहीं बाहर जाएंगे। और फिर पिकनिक की तैयारियां होने लगीं। कमलजीत को यकीन था कि वो लड़की फिर आएगी, और वो उसके मुंह नहीं लगना चाहता था। पिकनिक पर कमलजीत कहने लगा—"भाभी जान, अब हमें लाहौर लौट जाना चाहिए।" लेकिन उसी दिन तो फरहाद की चिट्ठी आई थी—तुम लोग एक महीना और न आओ। यहां बड़ी गर्मी है। मुझे कुछ समझ नहीं आ रही थी क्या करूं, क्या न करूं।

अगले दिन कमलजीत बैंक गया हुआ था कि वो लड़की सचमुच फिर आई। शिकारे को खुद चला रही थी। उसने मुझे दूर से ही देख लिया। एक नज़र मुझे देखकर उसके जैसे सोते सूख गए हों। ज़िन्दगी ने ये क्या सितम किया था! कहां हमारी मुलाकात हुई थी! कैसे मुलाकात हुई थी!

मैं उसे अपने तम्बू में ले आई।

लड़की बिल्कुल पागल हो गई थी। बार-बार कहती—"आपने मेरा महबूब छिपा लिया है, इसलिए कि मैंने आपसे आप

का मर्द छीना था !"

मैं उसको लाड़ कर रही थी।

"मैंने तो आपकी चोरी अनजाने में की थी। आपने तो दिन-दहाड़े मुझे लूट लिया।" लड़की अपनी ज़िद पर कायम थी।

"मैं तो उसे नहीं छोड़ूंगी। मैं मर जाऊंगी लेकिन उसे नहीं छोड़ूंगी," लड़की रो-रोकर फरियाद कर रही थी।

"सात साल की ये हमारी मुहब्बत है। एक नज़र और मैं उसकी दीवानी हो गई थी। मैंने उसे कैसे-कैसे प्यार नहीं किया ! कैसे-कैसे मैं उसपर कुर्बान नहीं हुई ! क्या हुआ कि किसी और ने मेरे होंठ जूठे कर लिए, और ये मुझसे खफा होकर चल दिया, मुझे अकेली छोड़कर और फिर लोगों ने मुझे बहकाना शुरू कर दिया ! कैसे मैंने अपने-आपको लुटाया। लाहौर की वो रातें गवाह हैं, शायद ही किसीने अपने हुस्न को यूं बरबाद किया हो।"

"बस-बस मालती," मैंने उसके मुंह पर हाथ रख दिया।

"आपको मेरा नाम कैसे पता है ?" वो हैरान हो गई।

"मुझे सब कुछ पता है।" उसकी पलकों पर लटके अश्रुओं को मैं अपनी चुन्नी के पल्लू से साफ कर रही थी।

कमलजीत के लौटने का समय हो रहा था और लड़की बज़िद थी कि वो उसे ज़रूर मिलेगी और मिलकर उसे शादी करने के लिए मिन्नत करेगी।

"नहीं तो मैं उसके सामने डूबकर मर जाऊंगी।" मालती बार-बार ये कहती और रोए जाती।

मैंने उसे बड़ा समझाया, लेकिन उसे मेरी कोई बात समझ नहीं आ रही थी। आखिर मैंने उसके पांव पकड़ लिए।

"मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं, तुम कमलजीत का पीछा न करो। कमलजीत एक फूल की तरह कोमल है। तुम उसका पीछा छोड़ दो। वो बरबाद हो जाएगा। तुम उसे भूल जाओ। सात साल उससे दोस्ती करने के बाद भी तुम्हें नहीं पता कि कमल किस मिट्टी का बना है ! मैं तुमसे भीख मांगती हूं, हाथ जोड़ती हूं, तुम कमलजीत मुझे बख्श दो।"

"अच्छा तो ये बात है !" मालती की आंखें जैसे फटने को आ रही थीं।

"तुमने मुझसे मेरे बच्चों का पिता छीना और मैंने शिकायत नहीं की। तुम कमलजीत को इस तरह मुझसे मत......।"

"अच्छा तो ये बात है ! मैंने आपके शौहर के साथ इश्क किया और आपने मुझसे मेरा महबूब छीन लिया !" मालती खड़ी हो गई।

और फिर एक शब्द कहे बिना मालती अपने शिकारे में जा बैठी और शिकारा चलाकर ले गई।

कमलजीत बैंक से जब लौटा मैंने उससे मालती के बारे में कोई बात नहीं की। मैं कमलजीत से सहमत थी कि अब हमें लाहौर चल देना चाहिए। कमलजीत ने सुना और उसकी जैसे जान में जान आ गई। वो फरहाद को तार देने के लिए चल दिया। अब कमलजीत को मैं अकेला बाहर नहीं जाने देना चाहती थी। मैं खुद उसके साथ गई। फरहाद को तार देकर हमने लाहौर जाने की तैयारियां शुरू कर दीं।

लेकिन अगले दिन फरहाद का तार आया—लाहौर में अभी गर्मी बहुत है। तुम लोग कुछ दिन और रुक जाओ।

पर नहीं, कमलजीत ने सीटें रिज़र्व करवा लीं और फिर जितने दिन हम श्रीनगर रहे मैंने कमलजीत का साथ न छोड़ा। एक क्षण-भर के लिए मैं उसे अकेला न रहने देती। मुझे पता था, यदि मालती उसे मिलकर वैसे फरियाद करेगी तो कमलजीत सब कुछ भूल जाएगा और फिर स्वीकार कर लेगा। चाहे खुद बरबाद हो जाए वो मालती को इन्कार नहीं कर सकेगा।

जिस दिन हमें चलना था उस दिन फिर फरहाद का तार आया। उसकी मर्ज़ी थी कि अगर हम श्रीनगर से ऊब गये थे तो रास्ते में मरी में दो हफ्ते और रुक जायें। मरी में कमल की जान-पहचान थी। किसी होटल में हम ठहर सकते थे।

कभी-कभी मेरा दिल कहता, फरहाद क्यों हमें अपने से दूर-दूर रखना चाहता था? और मेरी आंखों के सामने अत्यन्त भयानक चित्र घूमने लगते। कमलजीत के साथ मैं कुछ और दिन ! मैं इस

जन्नत का जी भरकर मज़ा लेना चाहती थी। बार-बार मैं मरी में रुकने के लिए कह रही थी। फिर कमलजीत भी हामी भरने लगा।

जैसे लुट चुके गांव में से कोई योगी निकलता है यूं मैं श्रीनगर से चल दी। कमलजीत मेरी हां में हां बेशक मिलाता जा रहा था, लेकिन मुझे यकीन था कि वो मरी कभी नहीं रुकेगा। वही बात हुई। ज्यों-ज्यों बस मरी के नज़दीक पहुंचती गई, कमलजीत ने मरी में रुकने के खिलाफ़ कारण गिनवाने शुरू कर दिए। आखिर मैं भी मान गई और उसी शाम हम रावलपिंडी पहुंच गए।

रावलपिंडी से हमने ट्रेन ली। इस ट्रेन ने हमें अगली सुबह लाहौर पहुंचा देना था। रावलपिंडी पहुंचकर हमने फरहाद को तार दिया कि हम मरी नहीं रुके थे।

गाड़ी के आने से पहले सीटों के लिए इतनी अफड़ा-तफड़ी थी लेकिन जब गाड़ी आई तो हमें समूचा एक कम्पार्टमेण्ट मिल गया।

सारी वो रात मेरी आंख नहीं लगी। सारी रात मैं कमलजीत से बातें करती रही। गाड़ी में बैठकर कमलजीत की जान में जान आई। आकाश में चांद तैर रहा था। गाड़ी पोठोहार की वादियों, नालों, खाइयों को लांघती चली जा रही थी। और कमलजीत और मैं। मैं और कमलजीत दुनिया-भर की बातें कर रहे थे।

अब जब मालती बहुत पीछे रह गई थी, मैं बार-बार कमलजीत को छेड़ती—"कमल, तुम मालती से ब्याह क्यों नहीं करवा लेते?" और कमलजीत ने एक बार भी शिकायत नहीं की। मुझे महसूस होता, कमलजीत के दिल में मालती के लिए कोई गहरा दर्द छुपा हुआ था। बार-बार कहता—"भाभी जान, मालती बड़ी बदनसीब लड़की है।"

"खूबसूरत कितनी है!" मैंने उसे छेड़ा।

"कभी आपने इसे उन दिनों देखा होता," कमलजीत की आंखें डबडबा आईं।

"अब मैं मानती हूं कि पोठोहारिनें जादूगरनियां होती हैं," हंसते हुए मैंने बात को टालने की कोशिश की।

"और हसीन भी।" कमलजीत अपने पोठोहार का दीवाना था।

"हां कमल, पोठोहारिनें हसीन भी होती हैं।" आखिर मैंने मान ली।

रात सुगन्धियों में लिपटी हुई थी। ठण्डी-मीठी हवा लाख स्वप्न जगा रही थी। पीला-पीला चांद मुस्कानें विखेर रहा था। मैं सोचती, ये रात कभी न खत्म हो। लेकिन वक्त दगा दे रहा था। मेरे जीवन की कोई रात इतनी जल्दी नहीं वीत गई।

२६

उधर से पो फटी, इधर गाड़ी लाहौर के प्लेटफार्म पर पहुंच गई।

सामने फरहाद खड़ा हमारा इन्तज़ार कर रहा था। मैंने फरहाद को देखा, फरहाद ने हम दोनों को देखा, एक ही सीट पर वैठे हुए, एक ही खिड़की से वाहर भांक रहे और मुझे लगा जैसे एक मैली-सी वदली हमारी आंखों के सामने से तैरकर गुज़र गई हो, मेरी पलकों के सामने से, फरहाद की पलकों के सामने से।

गाड़ी रुकी। फरहाद हमारे डिब्वे की ओर आया। लेकिन उसके कदमों में वो चाव नहीं था जो किसी वच्चों के पिता में होता है, जो अपने वच्चों को कई दिनों वाद मिल रहा हो, वच्चों की मां को कई दिन के वाद मिल रहा हो। वच्चे अभी सो रहे थे। मैं उन्हें जगाने लगी। कमलजीत कुलियों से सामान उतरवा रहा था। मुझे यूं लगा जैसे रिमझिम पड़ रही फुहार में उड़ रहे किसी-को कोई तड़प रही धरती पर पटक दे।

फिर वही जब्त, फिर वही संयम, फिर वही दिल में कुछ और ज़वान पर कुछ और। फिर वही झूठी हंसी होंठों पर। फिर मेरा नाटकीय जीवन शुरू हो गया। जिन्दगी की कविता खत्म हो गई। वहार जा चुकी थी। अव तो चारों ओर पतझड़ थी। सूखे पत्तों के ढेर इधर से उड़ते उधर चले जाते, उधर से आते इधर चले जाते।

लाहौर में मैंने कदम ही रखा था कि मेरे माथे पर त्योरियां पड़ने लगीं। एक वदबू मुझे आसपास से आने लगी। इस दुर्गन्ध को मैं फरहाद के लिए अपनी मर चुकी मुहब्बत की वदबू कहा करती थी।

और अब हमारे दर्म्यान एक और दीवार आन खड़ी हुई थी। एक नज़र और मुझे लगा फरहाद मेरी और कमलजीत की पाक मुहब्बत को उतना पाक नहीं समझता था। मुझे चारों कपड़े आग लग गई। बेलौस कमलजीत की ओर देखती और मेरे दिल में बेअन्त लाड़ उसके लिए उमड़ आता। मैं लाख कोशिश करती, कमलजीत को कहीं इस बेहूदा शक का अहसास न हो। अगर उसको इसका पता चला, वो तो हमारे मुह कभी नहीं लगेगा। और फिर मेरा क्या बनेगा? अपनी दुनिया के सूनेपन के ख्याल से मैं कांप-कांप जाती।

बाहर टैक्सी में बैठते हुए मेरी ज़िद थी कि कमल हमारे साथ पिछली सीट पर बैठेगा। अगली सीट पर बच्चू बैठा। रास्ते में बार-बार मैं कमलजीत से बातें करने लगती। फरहाद को मैंने कमलजीत की पतलून वाला किस्सा सुनाया जिसमें से सीटियों की आवाज़ आती थी। और फिर नसीम बाग के बारे में, जब कमलजीत के ऊपर तम्बू आन पड़ा था। हम बार-बार उसे छेड़ते। तम्बू उसके ऊपर गिरा हुआ था और वो नीचे सो रहा था। ये तो बारिश का पानी था जो चूकर जब उस तक पहुंचा तो कमलजीत की कहीं आंख खुली।

फरहाद की आदत थी, सुबह वो बहुत देर तक सोता था। सोना मुझे भी अच्छा लगता था, लेकिन अगली सुबह से मैंने और कमलजीत ने सैर का प्रोग्राम बना लिया। अभी मुंह-अंधेरा होता, हम लारेंस बाग की सैर के लिए निकल जाते। हमारे साथ शबनम होती। कभी उसे मैं उठा लेती, अक्सर वो कमलजीत चाचा के कन्धों पर सवार रहती। ये सैर सेहत से कहीं ज्यादा उस लालसा का सदका थी—मैं हर अपने नए दिन को कमलजीत के साथ कुछ घंटे बिताकर शुरू करना चाहती थी।

लेकिन ये भूख, ज्यों-ज्यों मैं इसे मिटाने की कोशिश करती, ये और-और बढ़ती जाती। इसका कारण एक हद तक फरहाद था। उसके पास होती तो मुझे एक सेक-सी आती, मेरा दम घुटा-घुटा-सा रहता। और जैसे कोई प्यासा पानी के लिए तड़पता है, मैं कमलजीत को ढूंढ़ने लगती। घर में होता तो मैं उसकी ओर देखती रहती, बच्चे उससे खेलते रहते। बच्चे उससे बातें करते होते, तो

मुझे लगता जैसे कमलजीत मुझसे बातें कर रहा हो। और जब वो दफ्तर जाता कित्ती-कित्ती देर टेलीफोन मिलाकर मैं उससे इधर-उधर की बातें करती रहती। किसी न किसी बहाने मैं दिन में कई-कई बार उसे टेलीफोन करती। एक बार टेलीफोन करती और टेलीफोन बन्द करने को मेरा जी न चाहता।

और फिर फरहाद को इसका पता चल गया। एक ही दफ्तर में तो थे। और कमलजीत किसी बात को छुपाकर थोड़े ही रखता था। और फिर छुपाता भी क्यों? फरहाद को यूं मेरा कमलजीत को देर तक टेलीफोन करना अच्छा नहीं लगता था। तो फिर क्या? मैं हर रोज़ कई-कई बार उसे टेलीफोन करती। एक दुपहर हम टेलीफोन पर कोई आध घंटा बातें करते रहे। इस दौरान में फरहाद ने मुझे टेलीफोन किया। मेरा टेलीफोन रुका हुआ था। कमलजीत का टेलीफोन भी खाली नहीं था। कुछ देर बाद उसने फिर मुझे टेली-फोन किया। फिर कमलजीत को टेलीफोन किया। दोनों टेलीफोन खाली नहीं थे। तीसरी बार भी जब उसने हमारे टेलीफोन रुके हुए पाये तो वो आग-बबूला हुआ कमलजीत के कमरे में गया। कमल-जीत के कमरे में जाकर फरहाद ने उसे डांटना शुरू कर दिया। पदवी में फरहाद कमलजीत से ऊपर था। कमलजीत ने घबराकर टेलीफोन का चोंगा मेज़ पर रख दिया और मैंने फरहाद को कमल-जीत के कमरे में चिल्लाता हुआ अपने कानों सुना।

"तुम किसे इतने लम्बे टेलीफोन दफ्तर में करते रहते हो?" फरहाद ने अपना अफसरी का रौब जतलाया।

"टेलीफोन भाभी जान का था," कमलजीत ने बिना झिझक के जवाब दिया।

और फरहाद कमलजीत की साफ़गोई पर भौंचक्का रह गया। पानी-पानी हुआ उसके कमरे में से चला गया। मैंने ये सब कुछ अपने कानों सुना और टेलीफोन का चोंगा मेरे हाथ से नीचे गिर गया। आज फिर हमारा टेलीफोन टूट गया था।

मेरी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। फरहाद ने किस तरह मुझे अपने दफ्तर में बदनाम किया था! हर किसीने उसकी

बेहूदगी सुनी होगी, देखी होगी। लोग क्या कहते होंगे ? फरहाद में सब ऐब थे। लेकिन मैं सोचती शायद ये ऐब नहीं था। मेरी वफ़ा को उसने कभी शक की नज़र से नहीं देखा था। अब मेरा ये भ्रम भी मिट गया।

मुझे जैसे हल्का-हल्का बुखार हो। अपने पलंग पर मैं औंधी जा गिरी। कोई आध घण्टे के बाद आया ने आकर मुझे बताया, कमलजीत टैक्सी में आया था। यूं लगता था जैसे उसकी तबियत खराब हो और उसने अपने आपको अपने कमरे में बन्द कर लिया था। मैंने सुना और मेरी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई। तेज़-तेज़ नीचे मैं कमलजीत के कमरे में गई। दरवाज़े बन्द थे। मैंने उसके दरवाज़े को एक ओर से खटखटाया, दूसरी ओर से खटखटाया, कोई जवाब नहीं। फिर मैं गोल कमरे में गई। गोल कमरे और कमलजीत के कमरे के दर्म्यान वाला दरवाज़ा केवल भिड़का हुआ था।

मैंने देखा कमलजीत अपने पलंग पर ढेरी पड़ा हुआ था। उसका बदन तप रहा था। उसका चेहरा लाल-सुर्ख था, उसकी पलकें मुंदी हुई थीं। कोशिश करने पर भी उसके मुंह से एक बोल नहीं निकला। मैं कमलजीत के पलंग पर बैठ गई और उसके बालों में उंगलियां फेरती उसे लाड़ करने लगी। मासूम जान, मैंने आग के कैसे अलाव में उसे झोंक दिया था ! मुझे कुछ समझ नहीं आ रही थी कि कमलजीत को क्या कहूं। कभी उसके गालों पर हाथ रख लेती, कभी उसके माथे को सहलाने लगती। आंखों ही आंखों से हमने लाख सन्देश एक-दूसरे को दिए। और एक सरूर में जैसे कमलजीत की आंख लग गई। एक नशे से मैं उसे यूं लाड़ करती मेरी खुद की पलकें जुड़ गईं।

और फिर हम दोनों चौंक उठे। गोल कमरे का दरवाज़ा फटाक से खुला और हमारे सामने फरहाद खड़ा था। बाकी किवाड़ वैसे के वैसे बन्द थे। सामने फरहाद खड़ा था और मैं कमलजीत के बालों में उंगलियां डाले उसके पलंग पर तकिए की टेक लगाए आधी लेटी आधी बैठी थी।

"बदमाशी, ये बदमाशी हो रही है !" फरहाद गरजा।

विट-विट कमलजीत उसकी ओर देख रहा था। हक्की-बक्की मैं उसकी ओर देख रही थी।

"इस घर में ये बदमाशी हो रही है !" फरहाद और ऊंचा चिल्लाया।

मैं चुप थी। कमलजीत चुप था। हम अपनी क्या सफाई पेश करते !

और फिर फरहाद ने एक काग़ज़ पर तलाक लिखा और मेरे हाथ में दे दिया। और ये धमकी देते हुए कि वो पुलिस स्टेशन जाकर रिपोर्ट करेगा कि उसकी बीवी एक पराए मर्द से अपना मुंह काला करती पकड़ी गई है, वह जलता-भुनता चला गया।

फरहाद चला गया। मैं और कमलजीत हैरान, एक-दूसरे की ओर देख रहे थे। कमरे का दरवाज़ा खोलकर मैं बाहर बरामदे में गई। अल्ला का शुक्र था कि आया बच्चों को लेकर बाहर सैर को गई हुई थी। खानसामा बाज़ार से तरकारी खरीदकर अभी नहीं लौटा था।

और मैं बाहर बरामदे में टहलने लगी। कितनी देर मैं टहलती रही। कोई भी नहीं आया। यदि किसी पुलिस वाले ने आना होता तो कभी का आ चुका होता। सामने सड़क पार ही तो पुलिस की चौकी थी।

हल्का-हल्का अंधेरा हो गया और तब कहीं बच्चे सैर करके लौटे। कमलजीत वैसा का वैसा अपने पलंग पर पड़ा फिक्रों में डूबा हुआ था। हमने एक-दूसरे से कोई बात नहीं की। बात करने वाली भी कौन-सी थी ?

बच्चे आये और मैं उनके साथ लग गई। फिर उनके खाने का समय हुआ। खाना खा चुके और उन्हें नींद आने लगी। आया को उसके काम में मदद देती, मैंने ढेर-सा अपना वक्त गुज़ार दिया।

खानसामा पूछने लगा—"साहब कब आयेंगे ?" वो हमारे खाने का इन्तज़ार कर रहा था। "साहब का खाना बाहर है, छोटे साहब की तबियत ठीक नहीं और मुझे आज भूख नहीं। खानसामा,

तुम आज हमारा खाना रहने दो।" और मैंने खानसामा को छुट्टी कर दी। किस मुंह से मैं कमलजीत को खाना खाने के लिए कहती ! मुझे यकीन था कि चाहे मैं लाख यत्न करूं, एक निवाला उसके मुंह से नीचे नहीं जायेगा।

आया जा चुकी थी। बच्चे सो चुके थे। खानसामा रसोई बन्द करके चला गया। और मुझे समझ न आती कि मैं क्या करूं ? बरामदे में टहलती जब मैं थक गई तो बरामदे की सीढ़ियों में जा बैठी। कुछ देर सुस्ताकर फिर टहलने लगी।

रात घोर अंधेरी थी। अगला कदम मेरा क्या होगा ? मुझे कुछ समझ नहीं आती। नीचे बरामदे में टहलती-टहलती जब मैं ऊबने लगी तो मैं ऊपर टैरिस पर जाकर टहलने लगी। और फिर ऊपर वाले सोने के कमरे में बच्चे भी अकेले थे।

और बार-बार मेरा दिल कहता—नीचे कमल भी तो अकेला है।

और मैंने देखा सामने फरहाद आ रहा था। शराब में बदमस्त, लड़खड़ा रहे क़दम मुझे टैरिस पर खड़े उसने देखा और वहीं से बकने लगा। यूं इस तरह उसे बोलते हुए देखकर शायद कमलजीत भी अपने कमरे से निकला और बाहर बरामदे में आ गया था। कमलजीत को देखकर फरहाद ने अपने कोट की अंदर की जेब में छिपाये छुरे को निकाल लिया और चमक रहे छुरे के फल को दिखाकर कहने लगा—"मैं तुम्हारी महबूबा को कत्ल करने लगा हूं। अगर तुममें हिम्मत हो उसे बचाने की, तो आ जाओ।"

और बदमस्त लड़खड़ा रहे कदम फरहाद सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आ रहा था।

टैरिस पर खड़ी मैं सब कुछ सुन रही थी। सब कुछ देख रही थी। और मेरे दिल ने कहा—'ये तो नाटक वाला वही पिटा-पिटाया अन्त होने वाला है।' और एक अजीब मुस्कान मेरे होंठों पर खेलने लगी।

इतने में फरहाद ऊपर पहुंच चुका था। मैं अन्दर कमरे में चली गई ताकि बाहर लोग तमाशा न देख और हर सांस मैं

अल्ला से दुआएं मांग रही थी कि कमलजीत ऊपर न आए। अगर फरहाद जैसे मर्द के हाथों, जिसने मुझे कदम-कदम पर धोखा दिया है, मुझे यूं मरना था तो मैं तैयार थी। लेकिन कमलजीत का बाल भी बांका न हो। और कमरे में घुसकर फरहाद ने जब मुझे बदतमीज़ी से पुकारा, मैंने उसके हाथ में पकड़े हुए छुरे की परवाह न करते हुए आगे बढ़कर चटाख-चटाख दाएं-बाएं उसे दो चपेड़ें जमा दीं और मैंने देखा सामने कमलजीत दरवाज़े पर खड़ा था—"भाभी जान, ये आप क्या कर रही हैं!"

कमलजीत को यूं अपनी जान की परवाह न करते हुए, ऊपर आया देख छुरा फरहाद के हाथ से खिसककर नीचे जा गिरा।

"भाभी जान, ये आपने क्या किया!" कमलजीत आगे बढ़कर फरहाद के गालों को सहलाने लगा।

फरहाद पानी-पानी हो गया।

फरहाद हैरान था वो ये क्या देख रहा था। इतनी कुर्बानी, इतना ईसार, इतनी मुहब्बत!

फरहाद हक्का-बक्का रह गया।

कोई किसीके लिए जान तक कुर्बान कर सकता है।

और फिर पता नहीं क्या हुआ, अश्रुओं से मेरा आंखें भर गईं। मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। अंधेरा-अंधेरा और बस।

सारी वो रात मैं फरहाद पर बरसती रही। मैंने उसे कैसे-कैसे शर्मिन्दा नहीं किया। एक-एक उसकी ज्यादती, जो कभी मेरी ज़बान पर नहीं आई थी, उस रात मैंने उसके सामने गिनवाई, उस दिन से लेकर जब मैंने उसके घर पहला कदम रखा था और आज तक जब वो छुरा लेकर मेरी हत्या करने के लिए आया था। मैंने उसे कमलजीत की कुर्बानी की दास्तान सुनाई। बार-बार मैं कहती—"अगर कमलजीत चाहता वो तो मेरी बोटी-बोटी बेच सकता था। मैं तो उसके सर से अपनी सारी दुनिया कुर्बान कर दूं।"

और इस तरह सवेरा हो गया।

हर रोज़ की तरह मैं नीचे गई। कमलजीत के कमरे का दरवाज़ा भिड़का हुआ था। मैंने दरवाज़ा खटखटाया। अन्दर से

कोई आवाज नहीं आई। मैं दरवाजे को खोलकर अन्दर गई। कमलजीत का कमरा खाली था। न कमलजीत था, न उसका बिस्तर था, न उसके कपड़े थे, न उसकी किताबें थीं। सामने कार्निस पर पड़ी मेरी तस्वीर अकेली थी। फटी-फटी परेशान नजरों से मैंने कमरे में इधर-उधर देखा। सामने मेज पर एक कागज का पुर्जा रखा था—

"मेरी प्यारी भाभी जान, मैं जा रहा हूं। आपको मेरी कसम जो आप मुझे ढूंढ़ने की कोशिश करें।

—कमल"

मोटे-मोटे दो अश्रु मेरे गालों पर ढुलकने लगे।

"कमल चाचा चले गए," खेलता-खेलता बच्चू आकर मुझसे कहने लगा। शबनम की निगाहें चारों ओर ढूंढ़ रही थीं, अपने जान से प्यारे कमल चाचा को। लेकिन वो कहीं भी नहीं था।

हमने सारा लाहौर छान मारा। कमलजीत कहीं भी नहीं था। सारे होटल, सारे दोस्त। और फिर दफ्तर छुट्टी के लिए उसकी अर्जी आई। दिल्ली का कोई पता था। मैंने उसे चिट्ठियां लिखीं। फरहाद ने लाख-लाख माफियां मांगी, लेकिन कमलजीत का कोई जवाब नहीं आया। चिट्ठियां बिना खुले हमें लौट आतीं।

और फिर अभी वो छुट्टी पर ही था कि कमलजीत की बदली रंगून की हो गई। कहां लाहौर और कहां रंगून! मैंने सुना और मेरे सोते सूख गये। मैं दिल्ली गई, लेकिन कमलजीत रंगून के लिए चल चुका था।

दफ्तर में दफ्तरी चिट्ठियां आतीं। कमलजीत के अपने दस्तखत। लेकिन हमारी किसी निजी चिट्ठी का वो जवाब न देता। मैं मिन्नतें करती हार गई।

आकाश पर निकले चांद को देखकर, ताजा खिले फूलों को देखकर, शबनम के मोतियों को देखकर, हरी-हरी घास पर दमक-दमक पड़ते, मुझे कोई याद आ जाता है और मेरी पलकें भीग-भीग जाती हैं। आज मेरे जीवन के कई साल गुजर चुके हैं।

मुद्रक : रायसीना प्रिंटरी, दिल्ली। 11106